आर्यसमाज

के

उज्ज्वल-रत्न

प्रकाशक—

आर्यसाहित्य मण्डल लि०, अजमेर.

* ओ३म् *

आर्यसमाज के उज्ज्वल रत्न

लेखक —

श्री पं० जयदेव शर्मा
विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ, अजमेर

भूमिका लेखक व सम्पादक

श्री० पं० सूर्यदेवजी शर्मा सिद्धान्तशास्त्री,
साहित्यालंकार, एम० ए०, एल० टी०
परीक्षा मंत्री
भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद्

प्रकाशक —
आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड् अजमेर

प्रथमावृत्ति	सन् १९४० ई०	मूल्य
१०००	संवत् १९९७ वि०	।)

बाबू मथुराप्रसाद शिवहरे के प्रबन्ध से
दी फ़ाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस अजमेर में मुद्रित.

प्रकाशक के दो शब्द

अखिल भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् ने आर्य कुमारों को आर्य-सिद्धान्त विषय की योग्यता को बढ़ाने के लिये सिद्धान्त-विशारद और सिद्धान्त-शास्त्री परीक्षाएं नियत कीं, उसमें प्रारम्भ से ही एक ऐसी पुस्तक की अति आवश्यकता अनुभव हो रही थी कि जिससे आर्य कुमार आर्य जगत् के प्रसिद्ध महापुरुषों के जीवनों को भली भांति जान जांय।

आर्य कुमार परिषद् के मान्य महानुभावों की सहमति से इस पुस्तक का निर्माण किया गया। जिसका सम्पादन उक्त परिषद् के परीक्षा मन्त्री श्री पं० सूर्यदेवजी शर्मा एम० ए०, एल० टी० सिद्धान्तशास्त्री, साहित्यालंकार, हैड मास्टर डी० ए० ए० वी० हाई स्कूल अजमेर ने किया है। हम लेखक व सम्पादक महानुभावों के बड़े कृतज्ञ हैं और आशा करते हैं कि आर्य कुमारों के चरित्र-गठन, समुचित ज्ञानवृद्धि और जीवन-स्फूर्त्ति के लिये यह पुस्तक अवश्य बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।

—प्रकाशक

विषयसूची

भूमिका

मानस विज्ञान के सिद्धान्तानुसार कोमल हृदय बालकों पर जितना प्रभाव उदाहरण और जीवनचरित्रों का पड़ता है उतना और किसी का नहीं पड़ता। वे बहुत सुगमता और रुचि के साथ उनका अध्ययन भी करते हैं, इसी भावना को ध्यान में रख कर यह छोटी सी पुस्तक उन विद्यार्थियों और बालकों के लिये रची गई है, जो धर्म और नीति अथवा सच्चरित्र के कोरे और शुष्क सिद्धान्तों में रुचि नहीं रखते, परन्तु उनके हृदयों में इन बातों का बीजारोपण करना माता पिता तथा गुरुजनों का परम कर्तव्य है। छोटे बालक भी इस पुस्तक में वर्णित महापुरुषों के जीवन चरित्रों को प्रसन्नता व रुचि पूर्वक कहानी के रूप में पढ़ सकेंगे और अप्रत्यक्ष रूप में उनके चरित्र निर्माण में यह पुस्तक अपना गहरा प्रभाव डालेगी और उनको महापुरुषों के उन्नत मार्ग पर ले चलने के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी, इसी उद्देश्य और आशा से यह पुस्तक लिखी गई है। छोटे बालकों के लिये अभिप्रेत होने से इस का भाषा यथासम्भव सरल रक्खी गई है।

आर्यसमाज ने जाति और देश को जागृत करके जगत् में अति प्राचीन आर्य संस्कृति को पुनः जीवित करने का संकल्प किया है। आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द ने जाति के बालकों को त्याग तप, धर्म, सत्य, न्याय और परोपकार की दीक्षा देने का मार्ग दिखाया है, आर्यसमाज के प्रमुख महापुरुष उसी पथ पर अपना जीवन व्यय कर चुके और कर रहे हैं। इस लिये उनके ही जीवन चरित्र हमारे भावी सन्तानों के हृदयों पर ऐसा उत्तम प्रभाव उत्पन्न कर सकेंगे जिससे आर्य कुमारों का भविष्य मार्ग अनायास विशुद्ध आर्य

संस्कृति के उन्नत मार्ग पर ढल सके। इस पुस्तक में उन आर्य महापुरुषों के जीवन दिये गये हैं जिन्होंने त्याग, तपस्या, धर्मसेवा, देशसेवा, लोकसेवा, समाजसेवा और जनहित में अपना सर्वस्व निछावर कर दिया वा कर रहे हैं। इनमें कुछ महान् आत्माएं दिवंगत हैं, कुछ महानुभाव जीवित जागृत हैं। छात्र उनके जीवनों को पढ़ कर उनका साक्षात् अनुकरण किये विना नहीं रह सकते।

प्रायः आजकल छात्रों और बालकों के अभिभावकों को यह कहते सुना जाता है कि उनके बालक धर्म की ओर रुचि नहीं रखते। समाज के नेता भी नवयुवकों की धर्म के प्रति उदासीनता को देखकर दुःखित होते हैं, लेकिन इस अन्यमनस्कता का प्रधान कारण धार्मिक पाठ्य सामग्री का रोचक रूप में युवकों और बालकों के सम्मुख उपस्थित न करना ही है। अतएव इस धार्मिक उदासीनता के निवारणार्थ और बालकों में वैदिक सभ्यता, वैदिक संस्कृति और धार्मिक भावना के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिये यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसी हमारी दृढ़ धारणा है।

आशा है समस्त धार्मिक शिक्षासंस्थायें, आर्यकुमार सभायें और भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् इस पुस्तक को अपना कर उसका अधिकाधिक प्रचार करेंगी।

निवेदकः—

—सूर्यदेव शर्मा सिद्धान्तशास्त्री,
साहित्यालंकार, एम० ए०, एल० टी०,
हैड मास्टर, डी० ए० ए० वी० हाई स्कूल.
अजमेर.

अजमेर,
दीपमाला
१९९७ वि०

॥ ओ३म् ॥

आर्यसमाज के उज्ज्वल रत्न

श्री दण्डीस्वामी विरजानन्द

श्री दण्डीस्वामी विरजानन्दजी अपने समय में व्याकरण के सूर्य थे, वेदविद्या के सागर थे। आप ही आगे चलकर श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी के गुरु बने थे।

पंजाब के कर्त्तारपुर ज़िले में बोई नाम की नदी के तट पर गंगापुर ग्राम में सारस्वत ब्राह्मण भारद्वाज गोत्रीय श्री नारायणदत्त के गृह में आपने जन्म लिया था। पांच वर्ष की आयु में भयानक शीतला रोग से आपकी आंखें जाती रहीं, इसीसे आपको लोग सूरदास स्वामी, प्रज्ञाचक्षु

स्वामी कहा करते थे। मथुरावासी आपको 'दण्डीस्वामी' भी कहते थे।

८ वर्ष की अवस्था में आपने घर में ही विद्यारम्भ किया। व्याकरण पढ़ने लगे कि थोड़े वर्षों बाद माता-पिता स्वर्ग सिधार गये। आप भाई के पास रहने लगे, परन्तु भाई के कुव्यवहार से आप १४ वर्ष की अवस्था में गृह त्याग ऋषिकेश की ओर आ गये। आपके बाल हृदय पर गायत्री का अधिकार था, आपने ऋषिकेश में गंगाजल के शीतल जल में बड़े तप से ३ वर्ष तक गायत्री जाप किया, वहीं छोटी-सी कुटिया बनाकर रहे, मन्दिर व क्षेत्र में भोजन पाते। वनैले जीव प्रायः रात को आकर उनकी कुटिया तोड़ जाते थे। एक रात्रि में अचानक उन्हें सुनाई दिया:—'तुम्हारा जो होना था हो चुका, अब तुम यहां से चले जाओ।' इसे आकाशवाणी जान विरजानन्द ऋषिकेश छोड़ कनखल आये।

वहां प्रसिद्ध संन्यासी पूर्णाश्रम स्वामी से आपने संन्यास की दीक्षा ली। इस दीक्षा से ही आपने 'विरजानन्द' नाम धारण किया। तप और निष्ठा से विरजानन्दजी की बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण हो गई थी। कनखल में आपने सिद्धान्तकौमुदी पढ़ी, बाद में आप काशी चले आये। वहां भी पढ़ने लगे साथ ही बड़ी प्रतिभा से पढ़ाने

भी लगे। इससे आपकी प्रसिद्धि शीघ्र ही फैली। वहां से आप गया आगये। मार्ग में आपको लुटेरों ने सताया। दैववश गवालियर के एक सरदार उसी मार्ग से जा रहे थे, आपकी पुकार सुनकर दयावश उस सरदार ने आपकी रक्षा की। आपकी संस्कृत में सुनाई विपत्ति का हाल एक पण्डित से समझकर वह आपका भक्त होगया, आपको बड़ी श्रद्धा से रखा। वहां से आप सोरों आगये। सोरों 'शूकरतीर्थ' नाम से विख्यात है। वहां आपने अगदराम और बुद्धसेन आदि को पढ़ाया। आपके अध्ययन के कारण सोरों का गढ़ियाघाट प्रसिद्ध हो गया। गंगाजल में आपको विष्णु स्तोत्र पढ़ते सुन स्वयं अलवर नरेश विनयसिंह प्रभावित हो उनको बड़े अनुरोध से अलवर लिवा लाये। अलवर-नरेश विद्वानों का बड़ा आदर करके अपने यहां रखते थे। अलवरेन्द्र उनसे प्रतिज्ञा करके तीन घंटा प्रति दिन नियम से पढ़ने लगे। अति शीघ्र व्याकरण जानने की इच्छा से अलवर नरेश की प्रार्थना पर श्री दण्डीजी ने 'शब्द-बोध' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसकी हस्तलिखित पुस्तक अलवर के राजकीय पुस्तकालय में सुरक्षित है। राजा विनय-सिंह बड़े प्रचण्ड थे तो भी गुरु विरजानन्दजी के सामने बड़े विनय से रहते थे। अलवर-नरेश ने कई मूर्ख

अपढ़ों की भी व्यर्थ प्रतिष्ठा की व एक बार प्रतिज्ञा भंग कर पढ़नें में त्रुटि की। दण्डीजी इससे खिन्न हो, तीन चार वर्ष रह कर अलवर से सोरों ही पहुँचे। यहां आप बहुत रोगी हो गये, पश्चात् भरतपुर मं आ गये। वहां भी आपका बड़ा राज-सन्मान हुआ। कुछ मास में आप मथुरा आ गये।

मथुरा में दण्डीजी ने एक पाठशाला खोल ली। वह पाठशाला विश्रान्त घाट के मार्ग पर अब भी टूटी-फूटी दशा में है। दण्डीजी की पाठशाला में पहले कौमुदी, शेखर, चन्द्रिका आदि पढ़ाये जाते थे परन्तु मथुरा में एक शास्त्रार्थ चर्चा चली उसमें काशी तक के पण्डितों ने लोभ से असत्य व्यवस्था दी, यह देख कर दण्डीजी ने सब अनार्ष ग्रन्थ त्याग दिये और आर्ष ग्रन्थ पाणिनीयाष्टक और महाभाष्य का पाठ चलाया। एक दिन आपने यमुना में एक दक्षिणी ब्राह्मण को पाणिनीय अष्टाध्यायी का पाठ करते सुना था। आपने सुनते ही वह सारी याद करली, उसको ही फिर पढ़ाने लगे तब से आपको आर्ष ग्रन्थों से बहुत प्रेम हो गया। आपने पूर्ण अष्टाध्यायी और महाभाष्य कण्ठ किये। तब से दण्डीजी ने आर्ष और अनार्ष ग्रन्थों का विवेचन किया। आपने आदित्य रामगिरि और गंगाराम शास्त्री आदि

अनेक विद्वानों को आर्ष ग्रन्थों का पक्षपाती बनाया और अनेक अनार्ष ग्रन्थों को यमुना में बहा दिया।

दण्डीजी को आर्ष साहित्य की प्रतिष्ठा की बड़ी धुन थी। महारानी विक्टोरिया की अभय घोषणा करने के लिये प्रतिनिधि होकर लार्ड केनिंग नवम्बर १८५६ ई० में आये थे, तब आगरे में दरबार हुआ था, उस समय दण्डीजी जयपुर नरेश महाराज रामसिंह को उत्तम और योग्य राजा जान कर उनसे भेंट करने के लिये आगरा पधारे। वहां आपने सार्वभौम सभा का प्रस्ताव रखा, बड़ा प्रभावशाली भाषण भी दिया। राजा रामसिंह ने पहले तो मान लिया पर फिर वे भूल गये।

संवत् १९१७ में ऋषि दयानन्द एक भव्य संन्यासी के रूप में रंगजी के मन्दिर में आकर ठहरे, बाद में वे भी दण्डीजी की पाठशाला में पढ़ने लगे। स्वामी दयानन्द की मेधा बुद्धि ने दण्डीजी को विशेष आकर्षित किया। वादविवाद के स्वभाव के कारण दण्डीजी स्वामी दयानन्द को 'कालजिह्व' और 'कुलकड़' कहा करते थे। दण्डीजी की इस नवीन विद्यार्थी पर बड़ी आशाएं थीं, जो ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन काल में पूरी कीं।

दण्डीजी मूर्तिपूजा का भी खण्डन करते थे। अनेक शास्त्रार्थ भी किये। मुरसान में रंगाचार्य्य के गुरु अनन्ताचार्य्य को तीन मास शास्त्रार्थ करके परास्त किया। दण्डीजी की भोजन व्यवस्था भी अपनी अनोखी ही थी, कभी फल, कभी अन्न, कभी दूध छुहारे खाकर रह जाते थे। कभी केवल सोंठ लवण ही खा छोड़ते थे। आप बुद्धि वृद्धि के निमित्त 'ज्योतिष्मती' ओषधि का सेवन किया करते थे।

दण्डीजी आंखों से हीन होकर भी प्रायः सब व्यवहार ऐसे ही करते थे जैसे समाखे करते हैं, आप विद्यार्थियों के भूले पाठ को पुस्तक में से खोज देते थे, ज़ीना चढ़ना-उतरना, नदी पार, घाट जाना आदि सभी कार्य ठीक २ कर लेते थे।

एक वार दण्डीजी सेंधे नमक के भ्रम में संखिया विष खा गये परन्तु यौगिक क्रिया से अच्छे हो गये।

दण्डीजी में अलौकिक प्रतिभा भी थी। एक प्रज्ञाचक्षु शतावधानी कवि गट्टूलाल मथुरा में आये। गट्टूलाल ने एक श्लोक रच कर बतलाया, दण्डीजी बोले ऐसे श्लोक तो मेरे छात्र रचते हैं। भरतपुर के राजपण्डित मणिराम ने एक श्लोक के कई अर्थ किये। एक अर्थ फ़ारसी में

भी किया। दण्डीजी ने श्लोक के फ़ारसी अर्थ में भी अनेक दोष बतलाये। दिल्ली का धूर्त हरिश्चन्द्र एक बार दण्डीजी की पाठशाला में छात्रों में छुपकर बैठा। थोड़ी शंका करते ही दण्डीजी ने कह दिया कि यह छात्र नहीं, यह तो धूर्त हरिश्चन्द्र है।

संवत् १६२५ में आश्विन मास त्रयोदशी सोमवार को श्री दण्डीस्वामी विरजानन्दजी का देहावसान हो गया। इनकी मृत्यु का समाचार सुन उनके परम शिष्य महर्षि दयानन्द ने एकाएक कहा था—कि "आज व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया।"

महर्षि दयानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द सरस्वती एक महापुरुष हुए हैं, इनके आन्दोलन ने भारतवर्ष में धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक क्रान्ति का श्रीगणेश किया है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्म भारत के पश्चिम में गुजरात प्रान्त के मोरवी राज्य के टंकारा ग्राम में औदीच्य ब्राह्मण श्री कर्षनजी तिवारी के गृह में हुआ। ये बड़े ज़मीदार थे, राज्य की ओर से लगान वसूली करते थे। स्वामी दयानन्द का जन्म का नाम "मूलशंकर" था। कर्षनजी शिव के उपासक थे, जप उपवास आदि में बड़े श्रद्धालु थे।

गुजरात में माघ चतुर्दशी को शिवरात्रि के दिन पिता ने १४ वर्ष के बालक मूलशंकर को भी व्रत करने के लिये कहा। मूलजी ने बड़ी श्रद्धा से व्रत व रात्रि जागरण किया और सब उपासक तो सो गये, पर मूल जागता ही रहा, मंदिर में शिवलिंग पर लगे हुए भोग-सामग्री,

मिठाई पर चूहों की लीला को खूब देखा। मूल बालक के हृदय में विचार उठा कि क्या यही वह महादेव है जो दैत्यों का संहार करता है, वह अपने पर से चूहों तक को नहीं हटा सकता, अनेक संकल्प-विकल्पों के पश्चात् बालक ने पिताजी को जगा कर प्रश्न किया। पिता ने कहा—'असली महादेव तो कैलाश पर रहते हैं, यह तो मूर्ति है।' तभी से उनके चित्त में वास्तविक शिव की खोज करने की समा गई, मूर्त्तिपूजा से चित्त उठ गया। पिता के उत्तर से सन्तोष न हुआ। उस समय तो घर आकर माता के आग्रह से खा पीकर सो गये।

कुछ समय पीछे घर में दो मृत्यु हुईं, एक बहिन की दूसरी चाचा की, मूलजी के हृदय में मृत्यु के सम्बन्ध में विचार उत्पन्न हुए, इस विचारमग्नता में बालक की आंखों से आंसू भी न निकले। उनका चित्त गृहजाल से उचट गया। पिता ने उसे गृहजाल में बांधने के लिये विवाह की तैयारी की। इधर बालक मूलशंकर १८—२० वर्ष की वयस में गृहत्याग कर चल दिये।

घर में मूलजी की खोज हुई, चारों ओर सिपाही भेजे गये, अन्ततः सिद्धपुर के मेले में साधु वेश में पकड़े गये। पिताजी ने खूब मारा, भगवें कपड़ों की धज्जियां उड़ादीं, घर में कड़े पहरे में रखा, परन्तु यह

विरक्त नवयुवक फिर लुटिया ले शौच के बहाने रात के तीसरे पहर घर से निकल गये, फिर बहुत ढूंढ़ने पर भी पता न चला। शिव की खोज में नवयुवक मूलजी ने जगह २ योगियों की तलाश की, अनेक विद्वान् संन्यासियों की सेवा की, एक दक्षिणी संन्यासी से संन्यास दीक्षा ली, अनेक योगियों से योगाभ्यास की क्रियाएं सीखीं, गुजरात से नर्मदा, नर्मदा से अरवली, वहां से उत्तर भारत में आये। हिमाचल के वनों में एक वार रीछ से पाला पड़ा, वह डंडा देख कर भाग गया, जंगलों में बहुत कष्ट भी पाये, अलखनन्दा नदी से बर्फ़ीली नदी में बर्फ़ के टुकड़ों से घाव होकर पैर लोहु-लुहान हो गये थे, चाहा वहां ही तप से देह गला दूं। फिर चित्त में ज्योति जगी, संसार का उपकार करना चाहिये, इसके लिये खूब विद्या पढ़नी चाहिये। फिर लौट आये और मथुरा में श्री विरजानन्दजी दण्डी स्वामी की पाठशाला में वेद-वेदांगों का अध्ययन किया। वहां ही स्वा० दयानन्द ने अपने अनार्ष ग्रन्थ दण्डीजी के आदेश से यमुना में बहा दिये, आर्ष ग्रन्थों का आश्रय लिया। विद्याध्ययन के अनन्तर आपने लौंगों का भरा थाल गुरुदक्षिणा में दे गुरुजी का आशीर्वाद और अन्तिम आदेश लिया—"भारत की अविद्या

का नाश करो, पाखण्ड का खंडन करो, वैदिक धर्म का उद्धार करो।"

गुरु का आदेश शिर पर धर स्वामी दयानन्द निकल पड़े। प्रथम कुंभ के मेले में हरद्वार जाकर पाखण्ड-खण्डिनी पताका गाड़ कर बड़ा प्रबल प्रचार किया। उस समय स्वा० दायानन्द की उमर ३६ वर्ष की थी। वहां उन्होंने अनेक पाखण्डों और पन्थों का खण्डन किया। उसी समय व्रत कर के सिवाय लंगोट के सर्वस्व त्याग दिया, तपस्वी दयानन्द घोर तपस्या में मग्न होगया, कड़ी धूप और असह्य सर्दी दोनों समान हो गये।

तप सिद्ध होने पर लंगोट बंद दयानन्द प्रचार-कार्य में लग गये। एक वार बदायूं के कलैक्टर ने आपसे पूछा आपको ठंड क्यों नहीं लगती। उत्तर दिया, 'आपके मुख को ठंड क्यों नहीं लगती? जैसे आपके मुंह को अभ्यास है, वैसे हमारे शरीर को।' एक बार स्वामीजी ने यौगिक प्राणायाम के बल से माघ पौष की सर्दियों में देह से पसीना निकाल कर दिखला दिया। यह सब ब्रह्मचर्य का प्रताप था।

स्वामीजी ने काशी आदि अनेक स्थानों में शास्त्रार्थ कर धुरन्धर पण्डितों को प्रखर विद्याबल से परास्त किया।

मुल्ला और पादरी भी वादविवाद में भय खाते थे। स्वामीजी निर्भय रहते थे। अंहिसा का इतना बल था कि एक बार आप गंगा में लेटे थे पास मगरमच्छ तैर रहा था, पूछने पर बोले—"कोई भय नहीं, जब हम उसे कुछ नहीं कहते, तब वह हमें क्यों कुछ कहेगा ?"

दयाशील इतने थे कि अनूपशहर में किसी ने आपको पान में विष दिया, विष को तो न्योली क्रिया से निकाल दिया, परन्तु तहसीलदार ने विष देने वाले को पकड़ कर सामने किया। बोले—"छोड़ दो इसे, मैं किसी को कैद में डालने नहीं आया, संसार को कैद से छुड़ाने आया हूं।" इस प्रकार विष देने वाले को भी छुड़ा दिया।

सत्य में इतनी दृढ़ निष्ठा थी कि खंडन मंडन भी व्याख्यान में खूब होते थे। लोगों ने कहा—यहां कलेक्टर आते हैं स्वामीज़ी तीव्र खंडन न करें। बोले—"प्राण चले जांय पर सत्य को छोड़ नहीं सकता।"

कर्णवास में विरोलि के ठाकुर ने स्वामीजी को रासलीला में बुलाया। स्वामीजी ने रासलीला की खूब निन्दा की, बोले—"ये अपने बड़ों का स्वांग करते हैं इन्हें दुनिया के सामने नचाते हैं, ये अपनी मां बेटियों से भी ऐसा करें तो पता लगे।"

इस पर ठा० कर्णसिंह तलवार खेंच कर स्वामीजी पर चढ़ आया, स्वामीजी ने निर्भय होकर तलवार छीन ली और भूमि पर टेक कर तोड़ डाली। वह अपनासा मुंह लेकर चला गया, इस ठाकुर ने रात्रि को कुछ सशस्त्र सिपाही स्वामीजी को मारने के लिये भेजे, वे स्वामीजी का हुंकार सुन कर ही उलटे पांव भागे।

काशी भारत में विद्या का केन्द्र माना जाता है, काशी हिन्दुओं का महान् तीर्थ भी है। ऋषि दयानन्द ने काशी को पराजित करने का निश्चय किया। काशी के राजा के सभापतित्व में बड़ी भारी सभा के बीच स्वामी दयानन्द ने शास्त्रार्थ-विजय किया।

स्वामीजी बड़े तेजस्वी थे। मिर्जापुर में पगडंडी पर एक सांड खड़ा था, स्वामीजी की भव्य मूर्ति देख कर वह भी भयभीत होकर भागा।

मेला चांदापुर में अनेक धर्मों के प्रमुख नेता एकत्र हुए थे, वहां भी ऋषि दयानन्द प्रतिपादित वैदिक सिद्धान्त की ही विजय रही।

स्वामीजी आजन्म ब्रह्मचारी थे, ब्रह्मचर्य का अपार बल होता है, जालन्धर के सरदार विक्रमसिंहजी एक वार दो घोड़ों की बग्घी लेकर सैर को निकले। चलते समय बग्घी के चक्के को स्वामीजी ने पीछे से पकड़

लिया, घोड़े बहुत चाबुक मारने पर भी एक कदम न बढ़ सके। घूम कर देखा तो पीछे स्वामी दयानन्द ने चक्के हाथ से पकड़े थे। इससे इनको स्वामीजी के ब्रह्मचर्य का बल ज्ञात हुआ।

स्वामीजी का मातृजाति के प्रति बड़ा आदर भाव था। एक बार मार्ग में एक मन्दिर के समीप कन्याओं को देख कर आपने आदर से शिर झुका लिया। पूछने पर बोले—यह मन्दिर को शिर नहीं झुकाया, सामने मातृरूप कन्या के प्रति मेरा मस्तक झुका है। ये सर्वजगन्माता जगदम्बा सर्वपूज्य हैं।

स्वामीजी की हार्दिक इच्छा थी कि देशी राज्यों के राजाओं का अवश्य सुधार हो, उनमें शिक्षा और आचार की वृद्धि हो। शाहपुराधीश तो स्वामी दयानन्द से बहुत काल तक पढ़ते रहे, जोधपुर के महाराज को एक बार वेश्या (भगतिन) को पालकी में कन्धा लगाते देख निर्भय होकर फटकार दिया था—"राजा लोग सिंह होकर कुत्तियों के पीछे क्यों लगते हैं?" इसी से खिन्न होकर बदले के भाव से इस वेश्या ने स्वामीजी के रसोइये को फुसला कर भोजन में विष दिलाया था जो स्वामीजी के देहावसान तक का कारण हुआ।

ऋषि दयानन्द स्वराज्य स्वदेशी और मातृभाषा के बड़े पक्षपाती थे। इसी से उन्होंने अपने प्रधान ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि और वेदों के भाष्य भी हिन्दी वा आर्यभाषा में बनाये। आप स्वयं खद्दर का ही चोला पहनते थे, स्वराज्य के लिये बड़े यत्नशील थे।

ऋषि दयानन्द जहां मूर्तिपूजा के प्रबल विरोधी थे वहां वे मरणोत्तर मनुष्य की मूर्ति स्थापन को भी बुरा समझते थे। कवि श्यामलदास के पूछने पर आपने कहा—'मेरी मूर्ति या स्मारक बनाने की आवश्यकता नहीं, मेरी अस्थियां और भस्मी किसी भी खेत में डाल देना।'

ऋषि दयानन्द ने गोरक्षा के लिये बड़ा यत्न किया था, कई लाख हस्ताक्षर करा कर गोहत्या बंद करने का प्रार्थना-पत्र भिजवाया और अपूर्व पुस्तक 'गोकरुणानिधि' बनाई जिससे ऋषि दयानन्द के हृदय की पशु जाति पर अपार कृपा का पता चलता है।

ऋषि दयानन्द का देहावसान ३१ अक्टूबर सन १८८३ ई० (सं० १९४०) को अजमेर नगर में भिनाय की कोठी में हुआ था। उससे कुछ काल पूर्व ही स्वामीजी ने कहा "अब हमारा अन्त समय है सब उपचार छोड़ दो।" रात्रि के ११ बजे श्वास का वेग बढ़ा और हाजत हुई, तब भी आपने सब कार्य स्वस्थ के समान किये। रात्रि भर शान्ति

से व्यतीत हुई, अनेक आर्य्य जन एकत्र थे, ऋषि दयानन्द ने सब को धैर्य दिया, प्रातः ६ बजे मकान के सब द्वार खुलवा दिये, उस दिन दीपमालिका का दिवस व्यतीत हो प्रतिपदा हो गई थी, आपने अन्त समय में ईश्वरस्तुति के वेद मन्त्र पढ़े, संस्कृत में ईश्वर का गुण-कीर्तन किया और सहर्ष गायत्री का पाठ कर कुछ समाधिस्थ हो आंख खोल कर बोले—"ईश्वर तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो, अहा ! कैसी अच्छी लीला की।" यह कह कर नश्वर देह को छोड़ कर चल दिये।

पञ्जाब के प्रसिद्ध विज्ञानशास्त्री श्री पं० गुरुदत्तजी भी वहां उपस्थित थे, वे इस अन्तिम दृश्य को देखकर बड़े प्रभावित हुए, दृढ़ नास्तिक से आप दृढ़ आस्तिक हो गये और ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त बन गये।

ऋषि दयानन्द ने 'आर्यसमाज' नाम संस्था को दृढ़तम दस नियमों के आधार पर निर्माण कर अपने उद्देश्य पूर्ण करने के लिये सुसंगठित किया जिसकी स्थापना बम्बई नगर में सं० १९३२ के चैत सुदी ५ को की गई थी। उसका मुख्य उद्देश्य वेद-प्रचार द्वारा जनता को सच्चे वैदिक धर्म और शास्त्रों की शिक्षा देना है।

श्री पं० गुरुदत्त विद्यार्थी M. A.

यह नवयुवक पाश्चात्य विज्ञान की चकाचौंध से प्रबल नास्तिक हो चुका था। ऋषि दयानन्द के देहावसान-काल के प्रभावजनक दृश्य को देखकर वह अपने पश्चिमी गुरुओं को त्याग कर ऋषि दयानन्द का दृढ़ आस्तिक शिष्य हो गया था।

श्री पं० गुरुदत्त विद्यार्थी का जन्म २६ अप्रैल सन् १८६४ ई० में मुलतान प्रान्त (पंजाब) में हुआ। आपके पिता ला० किशनप्रसाद जहां सिपाहियाना दिल के थे वहां फ़ारसी के अच्छे विद्वान् भी थे। पं० गुरुदत्त बाल्यकाल से ही विलक्षण बुद्धि के थे। शरीर सुडौल, सुसंगठित था, स्मरण शक्ति अति चमत्कारी थी, पाठशाला के पाठ एक वार सुनने से ही उनको याद हो जाते थे।

आपकी शिक्षा पांच वर्ष की आयु में घर पर ही प्रारम्भ हुई। आपके पिता स्वयं पढ़ाते थे। गणित में आपकी बुद्धि तेज़ थी। बड़ी बड़ी संख्याओं के जोड़,

गुणा, बाक़ी, भाग आदि बड़ी आसानी से विना काग़ज़ पैन्सिल के ही ज़ुबानी याद कर लिया करते थे। इस अद्भुत शक्ति ने आपको बाद में शतावधानी बना दिया था।

प्रारम्भिक शिक्षा के बाद आपके पिता ने आपको अंग्रेज़ी पढ़ाना आरम्भ किया। इसमें भी आप अच्छे निपुण हुए। ८ वर्ष की अवस्था में स्कूल में भर्ती किये गये। अपनी विलक्षण बुद्धि, स्मृति और धारणा के बल से आप अपने सहपाठियों से कहीं अधिक आगे बढ़ गये। फ़ारसी की बड़ी बड़ी किताबें आपने छोटी सी उम्र में ही कण्ठस्थ कर ली थीं। व्यर्थ समय न खोकर आप प्रायः ईश्वर के विषय में चिन्तन किया करते थे, प्रसिद्ध वैज्ञानिक न्यूटन के समान आपका अधिक समय आकाश की ओर देखने में ही व्यतीत होता था।

कविता करने की भी आपको लगन थी, आपने एक लम्बे उर्दू के लेख को शायरी में बदल दिया था। स्वाध्याय के आप बड़े व्यसनी थे। मैट्रिक पास करने के पहले ही आपने मसनवी मौलाना रूम, इन्डिया इन ग्रीस (पोकाक द्वारा रचित), Bible in India 'आईन मज़हबी हनूद' आदि अनेक पुस्तकें बांच डाली थीं। तभी से आप प्राणायाम का भी अभ्यास करते थे। प्राणायाम का

अच्छा अभ्यास करके आप कई घण्टों समाधि में बैठे रहते थे।

लाहोर के गवर्नमेंट कालेज में आपने उच्च शिक्षा प्राप्त की, एफ़० ए० में ही आप एम० ए० के समान प्रतिभाशाली थे। दर्शन ग्रन्थों में आपकी बड़ी गति थी, अंग्रेज़ी के अच्छे विद्वान् थे, गणित और विज्ञान में भी चतुर थे। वे कभी परीक्षा के लिये पाठ्य पुस्तकें घर पर नहीं पढ़ते थे, तो भी परीक्षा में वे सब से प्रथम ही रहते थे। विज्ञान आदि के अनुशीलन से उनके विचार नास्तिकता के हो गए थे।

जब महर्षि दयानन्द के विषम असाध्य रोग का समाचार प्राप्त हुआ तो मित्रों की प्रेरणा से आप भी देहावसान काल में अजमेर में आ पहुँचे थे। आपने ऋषि दयानन्द के शरीर की अति कठिन दुःखदायी दशा में भी उनकी शान्त, प्रसन्न मूर्त्ति देख कर बड़ा आश्चर्य किया। स्वामी दयानन्द के मुंह से कभी आह भी सुनाई न दी, इससे पं० गुरुदत्त एम० ए०, के हृदय पर आस्तिकता की गहरी छाप लगी और परमेश्वरीय पारलौकिक सत्ता का साक्षात् अनुभव होने लगा। तब से वे ऋषि दयानन्द के अनन्य भक्त हो गये।

ऋषि के सत्संग से प्रभावित होकर आपने अपना शेष जीवन आर्यसमाज की सेवा में लगाया। आपने स्वयं संस्कृत पढ़ना प्रारम्भ किया, अष्टाध्यायी पाणिनीय याद किया, संस्कृत में भाषण देने का अभ्यास किया, वेदों के मन्त्रों की वैज्ञानिक गूढ़ व्याख्याएं प्रकट करने लगे। आप प्राचीन विद्या जगाने के लिये एक बड़ा भारी विद्यालय खोलने के उद्योग में लगे, जिसका परिणाम वर्त्तमान लाहोर का डी० ए० वी० कालेज है। इसके लिये धन-संग्रह करने में आपने दिनरात एक कर दिया। आप को इस शिक्षणालय से प्राचीन आर्ष ग्रन्थों के विद्वान्, आर्य धर्म के प्रचारक उत्पन्न करने की भारी आशा थी, धन-संग्रह करते समय इस लक्ष्य को ही जनता के समक्ष बड़े उज्ज्वल रूप में रखा गया था, परन्तु बाद में इसके संचालकों का ध्येय बदल जाने से उसका लक्ष्य केवल स्कूल कालेज की सीमा तक ही रह गया।

पण्डितजी बड़े विनोदी प्रवृत्ति के थे। एक वार एक उच्च सरकारी पदाधिकारी ने, जो एम० ए० पास थे, अपने एक मित्र के साथ आकर पंडितजी से प्रश्न किया कि सुश्रुत में तो मांस खाने का विधान है, वह आपके सिद्धान्त से कैसे अनुकूल होगा? पण्डितजी बोले—हां विधान तो किया है, परन्तु यदि आप सुश्रुत को मानते हैं तो उसमें

सब से श्रेष्ठ मांस मनुष्य का बतलाया है, मनुष्यों में से भी एम० ए० का हो तो क्या कहना ? यह सुनते ही एम० ए० महाशय चुप हो गये ।

आपने वैदिक धर्म प्रचार के निमित्त एक पत्र भी निकाला, जो बाद में बन्द हो गया । संस्कृत के प्रचार के लिये आपने एक रात्रि-पाठशाला खोली, जिसमें वे स्वयं पढ़ाते थे । अति अधिक कार्य करने से आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया और रोग ने आपके शरीर को मृत्यु के द्वार तक पहुँचा दिया । १६ मार्च सन् १८६० को आपका शरीरान्त हो गया ।

इस प्रकार सहसा उठ जाने से आपके वियोग की असह्य वेदना श्री महात्मा मुन्शीरामजी जिज्ञासु को बहुत हुई । वे आपको स्वाध्याय विषय में अपना मार्गदर्शक मानते थे । सिद्धान्तों के पालन में भी आप बड़े ही कट्टर थे, शास्त्रार्थों में आप 'भीष्म पितामह' कहाते थे ।

स्वाध्याय के सम्बन्ध में आप कहा करते थे कि मैंने १८ वार ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश का पाठ किया । मैंने जब जब पढ़ा तब तब नई ही नई बातें पाईं । आपने ऋषि दयानन्द के जीवन को अपने जीवन में ढाल लेने का बड़ा यत्न किया । आप कहा करते थे कि मैं

ऋषि दयानन्द का जीवन लिख रहा हूँ, पूछने पर कह देते थे—"वह मेरे हृदय पर लिखा जा रहा है।" आपने अपने कमरे की दीवारें केवल ऋषि दयानन्द के चित्रों से ढक रखी थीं। ऋषि के इस भक्त ने अल्प जीवन काल में ही बहुत भारी लोक सेवा की। आपकी उपनिषदों की व्याख्या और वेदों और सिद्धान्त विषयक अंग्रेज़ी के लेखों ने योरोप और अमेरीका तक में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। प्रत्येक विद्यार्थी को श्री पं० गुरुदत्त विद्यार्थी का अनुकरण करना चाहिये।

श्री स्वामी दर्शनानन्दजी

आर्य समाज की विभूतियों में आप अपने काल में तर्क और उत्साह के मूर्त्तिमान् स्वरूप थे। प्राचीन वैदिक संस्कृति को जगाने के लिये आपको बड़ी भारी लगन थी, आपने अनेक आर्ष ग्रन्थ प्रकाशित कराये और अनेक स्थानों पर गुरुकुल खोले।

आपके गृहस्थ काल का नाम पं० कृपारामजी था, आपका जन्म अष्टवंशीय सारस्वत ब्राह्मण श्री रामप्रताप जोशी के यहां सं० १६१८ में पंजाब के 'जगरावां' नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता अच्छे धन सम्पन्न थे।

बाल्यकाल में आपने अधिकतर उर्दू और फ़ारसी का ही अध्ययन किया था। आपके पिताजी ने काशी में ग़रीब छात्रों की भोजन-सुविधा के लिये एक अन्नक्षेत्र खोला था, जो ४० वर्ष चला। इसी निमित्त उनको कई वार काशी आना जाना पड़ता था। इसी से आपको भी काशी में रह कर संस्कृत पढ़ने की

भारी रुचि उत्पन्न हुई, परन्तु ऋषि दयानन्द के उपदेश ने आप में आर्ष संस्कृत ग्रन्थों का अगाध प्रेम उत्पन्न कर दिया। आपने काशी में पं० परमेश्वरीदत्त आचार्य व हरनाथ शास्त्री (स्वामी मनीषानन्द) से व्याकरण व अन्य षट् शास्त्रों का अध्ययन किया। स्वभाव से आप निर्भीक थे। आपने काशी में वेद शास्त्रों के ग्रन्थ प्रकाशन के लिये २५ सहस्र रुपये लगाकर तिमिर नाशक प्रेस खोला, अष्टाध्यायी, महाभाष्य, काशिका सामवेद-संहिता और अनेक दर्शनों के ग्रन्थ सटीक अपने प्रेस में बड़े यत्न से प्रकाशित किये। पातंजलिकृत महाभाष्य सम्पूर्ण सब से प्रथम आपने ही छापा था और छात्रों को लागत मात्र मूल्य में ग्रन्थ प्राप्त करने की सुविधा कर दी थी, इससे आपको बड़ी ख्याति हुई।

बनारस के पुस्तक-प्रकाशक 'लाजरस कम्पनी' काशिका को २५) रु० में बेचती थी, श्री पं० कृपाराम शर्मा ने ५) रु० में देनी शुरू की, हानि सह कर लाजरस कम्पनी ने मुक़द्दमा किया, आपने उसमें श्री पं० गंगादत्तजी (आचार्य गुरुकुल कांगड़ी, बाद में श्री स्वा० शुद्धबोधजी तीर्थ) से विशेष टिप्पणियां लिखा कर छापा था, इससे आपने विजय पाई, परन्तु इस मुक़द्दमे में आपका बहुत अधिक रुपया व्यय हुआ।

सन् १८६२ में आप पंजाब आये। वहां महात्मा दल की ओर से आपने बड़ा प्रचार किया सैंकड़ों व्याख्यान दिये और शास्त्रार्थ किये। सन् १६०० में आप यू० पी० में आ गये।

संन्यास लेने के बाद आपने वैदिक धर्म और वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार बड़ी धूमधाम से करना प्रारम्भ किया। शास्त्रार्थ और युक्ति परम्परा में आपका पार पाना कठिन था। आपकी प्रबल युक्तियों के आगे बड़े बड़े नास्तिक और ईसाई पादरी और मुसलमान मौलवी न टिकते थे, अनेक स्थानों पर इनको परास्त किया। आपने सैंकड़ों ट्रैक्ट लिखकर अपनी विचारधारा को प्रचारित किया। आपने २५० से अधिक ट्रैक्ट लिखे, अनेक गुरुकुल खोले, आपके सब ट्रैक्टस दर्शनानन्द ग्रन्थमाला के रूप में छपे हैं। आपने मुख्य गुरुकुल सिकन्दराबाद और ज्वालापुर, बदायूं, बिरालसी और पोठोहर में स्थापित किये। आप जहां जाते थे, वहां ही प्रेस, गुरुकुल और पाठशालाएं खोलते थे। गुरुकुल सिकन्दराबाद के संचालन के लिये ही आपने अपार सम्पत्ति को तुच्छ वस्तु के समान त्याग दिया और संन्यास लेकर धर्मक्षेत्र में आ कूदे। आपका ध्येय था कि शिक्षा सर्वत्र निःशुल्क होनी चाहिये। इसी से आपने

अपने स्थापित गुरुकुलों में नि:शुल्क शिक्षा का क्रम चलाया था। आपका मुख्य कार्यक्षेत्र पंजाब, संयुक्तप्रान्त, राजस्थान, मध्यप्रदेश और बिहार ही रहा है।

आपकी सूझ बड़ी जबर्दस्त थी, एक पादरी ने, जो हिन्दू धर्म परिवर्त्तन कर ईसाई हुए थे, एक भारी जन-सभा में वैदिक धर्म और आर्यसमाज पर बहुत गन्द उछाला, जगत् के प्रवाह से अनादि-अनन्त वाले सिद्धान्त पर आक्षेप करते हुए कहा—"देखो संख्या एक से शुरू होती है पर समाप्त नहीं होती।" लोग सुन कर हैरान थे, पादरी वेदों को झूठा आदि कहकर अपमानित कर रहा था। आप इस अनादर को सह न सके तुरन्त भीड़ चीर कर आगे आये और बोले—'पादरी साहब आप भूलते हैं, संख्या भी अनादि है, आप एक में से उसके हिस्से $\frac{१}{२}$, $\frac{१}{३}$, $\frac{१}{४}$ आदि क्रम से घटाते जाइये, कहीं आदि नहीं मिलेगा। इसी प्रकार जगत् प्रवाह से अनादि और अनन्त है।' इस प्रकार की अलौकिक प्रतिभा देखकर लोग दंग रह गये।

आपने अपने जीवन काल में उपनिषदों और दर्शनों के हिन्दी में सरल भाष्य रचे, जो आर्यसिद्धान्त के बहुत ही अच्छे पोषक हैं।

आपका देहावसान हाथरस में ११ मई सन् १९१३ में ५९ वर्ष की आयु में हुआ। आर्य पुरुषों ने जब आपसे अन्तिम अभिलाषा पूछी, बोले—"मैं कहता हूँ कि समस्त विधर्मियों को सूचित कर दो कि जिसे किसी भी आर्य सिद्धान्त पर सन्देह हो वह अब भी शास्त्रार्थ कर जावे, मेरे पश्चात् सम्भवतः उसका उत्तर मिले या न मिले।"

धर्मवीर श्री पं० लेखराम आर्य मुसाफ़िर

आर्य समाज के वीर, निर्भय प्रचारकों में से प्राणों की बलि देने में सब से पहले श्री पं० लेखरामजी थे।

आपका जन्म पंजाब के जेहलम ज़िले के ग्राम सैदपुर के एक सारस्वत ब्राह्मण कुल में ८ सौर चैत्र १६१५ में हुआ था। आपके देह में क्षात्र तेज का अंश भी पैत्रिक सम्पत्ति में मिला था। आपके पितामह महता नारायण-सिंह वीर योद्धा थे। आप बाल्यकाल से धार्मिक संस्कार-वान् थे। आपने ११ वर्ष की अवस्था में अपने चाचा की देखादेखी एकादशी का व्रत रखा था।

बाल्यकाल में आपको प्रथम केवल उर्दू फ़ारसी की शिक्षा मिली थी। आपके विचार स्वतन्त्र थे, बुद्धि तीव्र थी। सं० १६३२ वि० के पौष मास में आप अपने चाचा श्री गण्डारामजी की सहायता से सारजेन्ट बन गये। आप प्रायः भक्ति से उस समय गुरुमुखी की गीता का पाठ किया करते थे।

इक्कीस वर्ष की अवस्था में माता पिता ने आपके विवाह की तैयारी की, परन्तु वीर ने स्वीकार न किया। आपकी वैराग्य-भावना आपको धर्मग्रन्थों के स्वाध्याय की ओर ले जा रही थी। आप पर श्री मुंशी अलखधारी के लेखों का अच्छा प्रभाव था, उनसे ही आपका चित्त ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज की ओर आकर्षित हुआ। आपने ऋषि के ग्रन्थ पढ़ने शुरू किये और विचारों में क्रान्ति आते ही आप दृढ़ आर्यसमाजी बन गये।

१९३६ वि० में आपने सीमा प्रान्त के पेशावर नगर में आर्यसमाज स्थापित किया। जीव और ब्रह्म की एकता का संशय मिटाने के लिये आपने ऋषि दयानन्द के साक्षात् दर्शन करने का विचार किया और १७ मई १८८० को एक मास की छुट्टी लेकर आप सीधे अजमेर पहुँचे। वहां आपने ऋषि दयानन्द से अनेक शंका समाधान किये और २५ वर्ष की आयु के पूर्व विवाह न करने का आदेश प्राप्त किया।

इस सत्संग के पश्चात् आपको प्रचार की धुन लग गई, 'धर्मोपदेश' नामक पत्र जारी किया, मौखिक व्याख्यान भी देते थे। आपकी बदली पेशावर से हो गई। २४ जुलाई १८८४ (सं० १९४१) को आपने पुलिस की नौकरी

छोड़ कर अपने को धर्मप्रचार के कार्य के लिये अर्पण कर दिया। आप धर्मप्रचार में सदा लगे रहते, जब अवसर मिलता पुस्तकें लिखते, पत्र निकालते। सदा प्रचार यात्रा में रहने से आपने अपना नाम ही 'आर्य मुसाफिर' (आर्य पथिक) रख लिया था।

आपका धार्मिक संघर्ष क़ादियान ज़िले के मिरज़ा गुलाम अहमद के साथ खूब हुआ। आर्यसमाज पर आक्षेप करने वाली 'बुरहान-ए-अहमदिया' पुस्तक के खण्डन में पंडितजी ने 'तकज़ीब-ए-बुरहान-ए-अहमदिया' लिखी। मिरज़ा ने 'सुर्म-ए-चश्म-आर्यो' लिखी, तो आपने उत्तर में 'नुस्खे़-ख़ब्त अहमदिया' लिखी। इस प्रकार जब तहरीरों से सन्तोष न हुआ तो स्वयं क़ादियान जा कर मिरज़ा को ललकारा और परास्त किया। मिरज़ा ने घोषणा की थी कि मेरे पास ईश्वर के दूत आते हैं, मैं जिसको चाहूँ प्रार्थना करके एक वर्ष के भीतर मार सकता हूँ। परीक्षा करने वाले को २४००) रु० वार्षिक इनाम की घोषणा दी। जब जमा करने को कहा गया तो मिरज़ा आंय-बांय-शांय करने लगा। उसके चमत्कारों की क़लई खुल गई।

आप पादरियों और मुसलमानों के मतों की खूब

पोल खोलते थे, पादरी तो सह भी जाते थे, परन्तु मुसलमानों की ओर से मुहम्मदी तलवार से प्राण ले लेने की धमकियां मिलने लगीं। फिर भी वीर पण्डित प्राणों का मोह छोड़कर निर्भयता से प्रचार करते ही रहे। धमकियों के उत्तर में कहा करते थे—'संसार के सब धर्म शहीदों के रुधिर से सिंच कर ही फूले फले हैं। इसी से मैं अपनी जान हथेली पर लिये फिरता हूँ।'

अनेक हिन्दू सनातनी उच्च कुलों के युवक यवनों और ईसाइयों के फेर में पड़ कर धर्म भ्रष्ट हो जाते थे, आपने अनेक युवकों को पतित होने से बचाया। आपके कान में ऐसी घटना आई नहीं कि आप फ़ौरन धर्मरक्षा के लिये कमर कस कर चल देते थे।

आपको 'ओ३म्' परमेश्वर पर बड़ी श्रद्धा थी। उसका अपमान आप न सह सकते थे। एक बार आप ला० देवराजजी के बागीचे में ठहरे हुए थे। एक गमले पर 'ओ३म्' लिखा था, उस पर एक ब्राह्मण छोकरा जूता मार कर पण्डितजी को चिढ़ाने लगा, ज्वर की दशा में ही पण्डितजी ने उसको दण्ड देने के लिये पकड़ने की चेष्टा की, हाथ न आने पर आप क्रोध में भरकर खाट पर लेटे लेटे हांप रहे थे कि म० मुन्शीरामजी (स्व० स्वामी

श्रद्धानन्दजी) वहां आ पहुँचे। पण्डितजी ने तीव्रता से कहा—"आपका यह गृह आर्यगृह नहीं, मैं यहां न ठहरूंगा, और आप 'ओ३म्' वाले गमले को नीचे क्यों रखवाते हैं ? इसके अपमान के कारण ला० देवराज ही हैं।" बड़े अनुनय-विनय से पण्डितजी को शान्त किया गया।

आप बड़े त्यागी, सन्तोषी, आदर्श ब्राह्मण थे, आप पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा से निर्वाहार्थ केवल २५) रु० लेते थे। आपने ३६ वर्ष की आयु में रुद्र नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहकर सं० १९५० में मरी ज़िला के 'भन्न' ग्राम की कुमारी सौ० लक्ष्मीदेवी का पाणिग्रहण किया। आपने अपनी पत्नी को स्वयं विद्याभ्यास कराया था। वे चाहते थे कि उनकी पत्नी भी धर्मप्रचार का कार्य करे। सं० १९५२ वि० में आपके पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम सुखदेव रखा। पुत्र और पत्नी को धर्मप्रचार के लिये तैयार करने की नियत से प्रचार में आप पत्नी को भी अपने साथ ही रखा करते थे। यात्रा के कष्टों को न सह सकने के कारण १॥ वर्ष के पुत्र का देहान्त हो गया।

पुत्र-वियोग ने भी आपको धर्मप्रचार से विचलित न किया। आपको ऋषि दयानन्द के विशाल प्रामाणिक

जीवनचरित्र के लिखने की धुन लग गई। आपने ऋषि के जीवन का खूब अनुसंधान किया, बड़ी खोज से जीवनचरित्र संकलित किया, जो उनके जीवन काल में न लिखा जा सका। उनके बाद श्री मा० आत्मारामजी अमृतसरी ने सारी सामग्री को उर्दू में संकलित कर महर्षि दयानन्द का विशाल जीवन चरित्र प्रकाशित कराया।

आप ऐतिहासिक अनुसंधान में बड़े प्रवीण थे। अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी, संस्कृत आदि से भी घटना एकत्र कर लेते थे। इसी कला से आपने ऋषि का जीवन चरित संकलित किया था।

क़ादियान के मुसलमानों ने आप पर कई मुक़दमें चलाए, परन्तु सब ख़ारिज हो गये। इससे चिढ़कर वे आपके प्राण हरण की चेष्टा करने लगे।

१८९७ ई० के फ़रवरी (सं० १९५६ विक्रमी फाल्गुन) के बीच में एक काला, नाटा मुसलमान अपने को शुद्ध कराने के बहाने आपके पास आया, अनेक मित्रों की चेतावनी देने पर भी आप इस ढोंग बिल्ले पर विश्वास कर उसे धर्मोपदेश देते रहे। एक दिन सायंकाल ऋषि दयानन्द की जीवनी लिखकर उठकर अंगडाई ले रहे थे कि उस नीच पुरुष ने आपके पेट में

बालकपन में आप प्रतिभावान् बालक थे, जो बात सुनते तुरन्त याद कर लेते, बालकपन में अपने चतुर गुणों से सब के प्रेमपात्र हो गये और खूब लाड प्यार में पले। एक बार बालक बृहस्पति ने बहुत शोर मचाया। पिताजी ने बड़ी ज़ोर से धमका दिया, धमकी से खिन्न हो बालक ने लटकती रस्सी में गला फंसा कर मरने की धमकी दी और रो-रोकर घर भर सिर पर उठा लिया। माता ने बड़ी कठिनता से चुप कराया।

बालकपने में तुलसी रामायण की कथा सुन कर उससे आपको बड़ा प्रेम हो गया था। पिताजी की अनेक स्थानों पर बदली होते रहने से पढ़ाई का क्रम नियमित न हो सका था। पौष सं० १९३० से आप नियमपूर्वक बनारस में पढ़ने लगे। बाद में कुछ वर्ष आप बड़े अवारागर्द भी रहे, परन्तु आपको अपने चरित्र-रक्षा का बड़ा ध्यान रहता था।

काशी में एक दिन विश्वनाथ के मन्दिर में रींवा की रानी के कारण आपको दर्शन के लिये सिपाही ने न जाने दिये। धर्मद्वार पर ऐसी ऊंच नीच देखकर ईसाई होने को सोचने लगे। रोमन केथोलिक पादरी लीफूं के चक्र में पड़े। आपने उक्त पादरी को एक 'नन'

के साथ घृणित दशा में पाकर ईसाई मत से मुंह मोड़ लिया। बनारस में सेंधिया घाट के नीचे की गुफ़ा में एक कामान्ध गुण्डा नांगे साधु ने एक अबला को पकड़ लिया था, अबला चीख रही थी, आपने उस के सतीत्व की रक्षा की, वह देवी सन्तान के लोभ में फंसा कर वहां लाई गई थी। इसी प्रकार दशहरे के अवसर पर दशमी के स्नान पर एक भीड़ में एक देवी के पीछे लगे गुण्डे को आपने चपतों से सीधा किया। तब से वीर मुन्शीराम के हृदय में 'वीर' बनने की साध समा गई थी। इसी प्रकार आपने मथुरा में एक नवयुवति की गुंसाई के पंजे से रक्षा की। वह भी झांकी लेते समय गुंसाई की दुष्ट वासना का शिकार बनने का ही थी।

आपने सं० १९३४ में गृहस्थ में प्रवेश किया। नवयुवक दशा में पढ़े हुए अंग्रेजी के उपन्यासों से आपके चित्त में पत्नी की कुछ कल्पना बनी थी, हिन्दू रीति से एक अल्प वयस की कन्या से विवाह होने पर वह कल्पना धूल में मिल गई और तब से आपके चित्त में बाल-विवाह के विपरीत बड़ा तीव्र आन्दोलन मच गया। बरेली में रईसों की कुसंगत से आप में मद्यपान का दोष लग गया था, परन्तु एक महफिल में कायस्थों की घृणित दशा देख आपने सदा के लिये मद्य-मांस का सेवन त्याग दिया।

बरेली में १४ श्रावण सं० १९३६ के दिन महर्षि दयानन्द पधारे थे। उनके रहन-सहन का प्रबन्ध आपके पिताजी के सुपुर्द था। उन पर स्वामी दयानन्दजी के व्याख्यान का बड़ा असर पड़ा, पिताजी की प्रेरणा से मुन्शीराम भी व्याख्यान सुनने गये। मूर्तिपूजा के खण्डन वाले व्याख्यानों से पिता की इच्छा तो हटी, परन्तु इन पर उनका गहरा असर पड़ा। वे अपना अधिक समय उनके व्याख्यान सुनने और शंका समाधान में लगाते। इस सत्संग से म० मुन्शीरामजी के जीवन का काया-पलट हो गया।

आपके मद्य पान आदि के व्यसन से बचने में दूसरा हाथ आपकी पतिव्रता धर्मपत्नी का था।

बहुत ऊंची शिक्षा तो आप प्राप्त न कर सके तो भी आप एफ़० ए० होने के पश्चात् नायब तहसीलदार बनाये गये। सरकारी नौकरी में अपमान के कटु अनुभव ने शीघ्र ही आपको नौकरी छोड़ने पर बाधित किया। वे फिर वकालत की ओर झुके। सं० १९३७ में आपने लाहौर में कानून पढ़ना शुरू किया और स्वतन्त्र आजीविका की चिन्ता लगी, मुख्तारी परीक्षा में पास हो गये, और यत्नपूर्वक मुख्तारी करने लगे। सं० १९४० की १३

कार्त्तिक को स्वामी दयानन्द का देहावसान का समाचार मिला। १८८१ में वकालत की परीक्षा भी पास की। एक दावत में मद्य-मांस का दौरदौरा था, वहां आपके मित्र नशे में चूर होकर एक देवी पर राक्षसी कृत्य करने पर तुले थे। देवी की आर्त्त भरी चीख ने मुन्शीरामजी की आंखें खोल दी, देवी की तो रक्षा की, साथ ही मद्य बोतल के भरा गिलास दीवार में दे मारा और व्यसन का सदा के लिये अन्त हो गया। यहीं से नये जीवन का सूत्रपात हुआ। आप प्रथम ब्राह्म समाज की ओर झुके, आत्मा के पुनर्जन्म की समस्या ने आपको सत्यार्थप्रकाश की ओर खेंचा। वहां आठवें समुल्लास में आपका समाधान हुआ और तब से वे आर्यसमाज के सभासद हो गये।

आर्य मित्रों के आग्रह से आप प्रधान बन गये। तब से आपने सत्यार्थ प्रकाश को गहराई से विचारा, 'भक्ष्याभक्ष्य' प्रकरण के स्वाध्याय से एक आन्दोलन मच गया। मुन्शीराम मांस तो खा लेते थे, मद्य छोड़ चुके थे। एक दिन सवेरे अनारकली से मांस का भरा टोकरा गुजरते देखा, बकरियों के टूटे पैर बाहर लटक रहे थे। देखते ही उनका दिल दहल गया, सत्यार्थ प्रकाश की पंक्तियां दिल में क्रान्ति करने लगीं। उसी

दिन सायं काल को भोजन में से मांस का कटोरा उठा कर दीवार पर दे मारा। लोगों ने रसोइये की भूल समझी, पर मुन्शीराम बोले—'रसोइये का कसूर नहीं है, एक आर्य के मत में मांस भक्षण महापाप है।" मैं थाली में मांस सह नहीं सकता।

इस घटना ने निरामिषभोजियों की संख्या की वृद्धि कर दी, तब से मुन्शीराम 'महात्मा' होने के मार्ग पर चल पड़े।

सं० १९४४ में पुनः वकालत की परीक्षा दी। एक साहूकारी का मुक़दमा केवल इसलिये ही छोड़ दिया कि उसमें जालसाज़ी की गई थी, इससे इनकी मुख्तारी कुछ मन्दी पड़ गई, पर धर्मसेवा का उत्साह कम न हुआ। सुकेत रियासत के एक मुकदमें में आपकी विजय होने से आपकी वकालत खूब चमकी। इधर लाहौर में एक शास्त्रार्थ में अच्छी विजय पाई। सं० १९४३ में आपको श्री पं० गुरुदत्तजी विद्यार्थी के सत्संग का लाभ हुआ। इसी वर्ष आपने सनातन धर्म के नामी पण्डित पं० दीनदयालजी से शास्त्रार्थ की टक्कर ली।

आपकी धर्म प्रचार की धुन बराबर बढ़ती गई, दूर दूर के जिलों में प्रचारार्थ जाने लगे। एक वार कपूर-

थला भी शास्त्रार्थ के लिये गये। मूर्त्ति पूजा पर बड़ा भारी शास्त्रार्थ हुआ।

५ चैत्र सं० १६४६ (१६ मार्च १८६६ ई०) को श्री पं० गुरुदत्तजी का देहावसान आपके लिये एक असह्य घटना थी। आप पं० गुरुदत्तजी को स्वाध्याय का पथ-प्रदर्शक समझते थे। श्री पण्डितजी का सारा कार्य भार अब मुन्शीरामजी पर आ गया। तभी से मुन्शीरामजी 'महात्मा' कहाने लगे। १६०२ ई० में गुरुकुल कांगड़ी का उद्घाटन हुआ। १६५६ वि० में 'सद्धर्म प्रचारक' भी प्रेस सहित गुरुकुल हरद्वार आ गया। तब से सद्धर्म प्रचारक उर्दू को त्याग कर हिन्दी में निकाला गया। सं० १६६१ में आपने संन्यास लेकर स्वामी 'श्रद्धानन्द' का रूप धारण किया।

सं० १६४८ में १५ भाद्रपद को आपकी धर्मपत्नी कठिन रोग से पीड़ित हो ४ बच्चों को छोड़ स्वर्गवास कर गईं थीं। इसके पश्चात् महात्मा मुन्शीराम ने अनेक दबाव पड़ने पर भी दूसरा विवाह नहीं किया था।

महात्मा मुंशीरामजी ने गुरुकुल संस्था के प्राचीन आदर्श की पूर्ति के लिये १८६८ सन् में आर्य प्रतिनिधि सभा में प्रस्ताव रखा और ३००००)(तीस सहस्र) रु० संग्रह करने की प्रतिज्ञा कर दौरे पर निकल गये। तीन

वर्ष में ४०००० (चालीस सहस्र) द्रव्य एकत्र किया। और हरद्वार को गंगा के तट पर दानशील स्व० अमन सिंहजी के दान की पवित्र भूमि में ग्राम कांगड़ी के पास १६०३ ई० मार्च में गुरुकुल स्थापित किया गया। गूजरावालां से ३६ ब्रह्मचारी वहां लाये गये। आज यह संस्था अविचल भाव से ३८ वर्ष पूर्ण कर 'विश्व विद्यालय' के रूप में चल रही है, भिन्न २ प्रान्तों में इस की १० से अधिक शाखाएं १५०० विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं, इसी के अनुकरण में प्राचीन आदर्शों पर अनेक प्रान्तों में भी कई गुरुकुल चल रहे हैं।

आर्यसमाज की जागृति ने ईसाइयों की प्रगति को ढीला कर दिया, इससे ईसाइयों ने सरकारी अफ़सरों के खूब कान भरे और आर्यसमाज को सरकार का शत्रु, राजद्रोही संस्था बतलाना शुरू किया, फलतः आर्य-समाज पर दमन शुरू हो गया, पटियाला, आदि रियासतों तक में आर्यसमाजियों को बहुत सताया गया। उस समय भी महात्मा मुन्शीरामजी ने बहुत आन्दोलन किया और अनेक उपायों से गुरुकुल तक में राजकीय प्रान्तीय लाट और वायसराय तक को बुलवा कर सरकार के संदेह दूर कर दिये। इस प्रकार आपने आर्यसमाज की अच्छी रक्षा की।

१६०८ ई० (सं० १६६५) में आपने ही यत्न करके सार्वदेशिक सभा को स्थापन किया और आप ही उसके प्रधान निर्वाचित होते रहे।

आपके हृदय में हिन्दी के प्रति अपार प्रेम था। इसी से प्रेरित होकर २५ वर्ष पुराने उर्दू पत्र को आपने हिन्दी में कर दिया। आप हिन्दी को 'आर्यभाषा' कहते थे। आपको हिन्दी साहित्य सम्मेलन (भागलपुर) का सभापति भी बनाया गया। आप अपने महान् गुणों से लोकप्रिय नेता हो चुके थे, आपकी गणना महापुरुषों में होने लगी थी। आपकी व्यक्ति का प्रभाव महात्मा गांधी पर बहुत था, दीनबन्धु एड्रूज़ तो आपको गुरु मानते थे। इङ्गलैण्ड के अनेक प्रसिद्ध पुरुष आप से आशीर्वाद मांगते थे।

गढ़वाल में दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायतार्थ आपने ७० सहस्र रुपया एकत्र किया और ५४ सहस्र से अधिक सहायता में व्यय किया, शेष पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा को सौंप दिया।

३० मार्च १६१६ को देहली में सत्याग्रह के सम्बन्ध में भारी हड़ताल हुई, स्टेशन पर गोली चली, कम्पनी-बाग में सभा हुई, उस पर भी गोली चलाई गई। परन्तु

वीर नेता श्रद्धानन्द ने गुरखों की किरचों के आगे अपना सीना अड़ा दिया और अभेद्य शस्त्र सेना दो क़दम पीछे हट गई, अपनी बलि द्वारा संन्यासी ने लाखों को मशीनगनों द्वारा भून दिये जाने से बचा लिया।

शुद्धि और हिन्दू संगठन के कार्य के तो आप प्राण थे। आपके शुद्धि आन्दोलन ने हिन्दू समाज में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी थी, नौमुस्लिमों और अनेक मुसलमान वर्गों को भारी संख्या में शुद्ध किया गया। इस काय ने मुसलमानों को स्वामीजी के प्राण लेने तक के लिये उतारू कर दिया।

स्वामीजी को हत्या की धमकी के पत्र आने लगे थे, इधर स्वामीजी का स्वास्थ्य बहुत गिर चुका था। रोग से देह निर्बल था। २३ दिसम्बर सन् १९२६ ई० को प्रातः एक नवयुवक मुसलमान इस्लाम धर्म पर मुलाक़ात के बहाने आया। उसे बुला कर बैठाया गया। वह एक बार तो पानी पीने के बहाने बाहर गया। लौटते समय उसने संन्यासी के निर्बल शरीर पर पिस्तौल की गोलियां दाग दीं। श्री धर्मपालजी विद्यालंकार ने हत्यारे अब्दुलरशीद को धर दबोचा और पुलिस के आने तक दबाये रखा। इस प्रकार "अमर शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द" अमर पद को प्राप्त हुए।

स्वामीजी की अर्थी के साथ इतना विराट जलूस श्मशान को गया कि दो ढाई मील तक नरमुंड ही नरमुंड दिखाई देते थे।

श्रद्धा, वीरता, साहस, उद्योग, देशभक्ति, धर्मभक्ति, लोकसेवा आदि गुणों की अपूर्व तेजस्वी मूर्ति स्वामी श्रद्धानन्द लोक में चिरस्मरणीय हैं।

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय

आर्य समाज के तथा देश और धर्म के सेवकों में से ला० लाजपतराय अपने ढंग के एक ही पुरुषरत्न थे।

लालाजी का जन्म २८ जनवरी १८६५ ई० को पंजाब में जगरावां स्थान में हुआ था। आपके पिता लाला राधाकृष्णजी पंजाब के शिक्षा-विभाग में काम करते थे, वह प्रायः अनेक स्थानों पर बदले जाते रहे, वे जन्मभूमि में न रख कर बालक लाजपत को भी सदा अपने साथ रखते थे, और स्वयं भी पढ़ाते थे। आप लुधियाने में प्रथम मिशन स्कूल में पढ़े फिर पिता के साथ अम्बाला चले गये। १८८० में आपने पंजाब और कलकत्ता दोनों स्थानों का इन्ट्रेंस पास किया, आपको छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। आपने एफ़० ए० और मुख़तारी की तैयारी की, विद्यार्थी काल में ही श्री पं० गुरुदत्तजी और महात्मा हंसराजजी आपके मित्रों में से थे।

मुख्तारी पास करके आप मुख्तारी करने लगे और फिर वकालत पास करके १७८६ में हिसार में प्रेक्टिस करने लगे। १८६३ में आप लाहौर चले आये। वे वहां मित्रों सहित आर्य समाज के सदस्य हुए। १६४० की दीवाली के अगले दिन स्वामी दयानन्द का देहावसान हुआ था। इस निमित्त आपने जो भाषण स्वामीजी के जीवन के सम्बन्ध में दिया, इससे आपके व्याख्यान का सिक्का बैठ गया।

तीन वर्ष बाद आप डी० ए० वी० कालेज की योजना में लग गये, आप स्वयं कॉलेज की प्रबन्धक कमेटी के मन्त्री व उपसभापति रहे, कई वर्ष तक बिना कुछ लिये सेवा रूप से अध्यापक कार्य किया, और अनथक समाज सेवा करते रहे।

उत्तर भारत में १६५३ और राजपूताने में ५६ वि० के घोर अकालों ने जनता में त्राहि २ मचा दी थी, उस समय ईसाइयों ने ईसाई मत फैलाने का बड़ा काम किया, जिसे देखकर ला० लाजपत राय ने अनाथों के लिये बड़ा काम किया। अकाल पीड़ितों को भिवानी और मुजफ्फरपुर के अनाथालयों में लाकर रखा। इस प्रकार लगभग २००० अनाथों की रक्षा की गई। १६०२

ई० को आप फ़ैमिन-कमीशन में भी थे। सं० १९६२ (सन् १९०५) में कांगड़ा का भारी भूकम्प हुआ था। आपकी अधीनता में लाहोर आर्यसमाज ने भारी सहायता पहुंचाई, आपके स्वयंसेवक दल ने बड़ा काम किया।

देश सेवा के कार्य में भी आप लगे रहते थे जिसके फलस्वरूप आपको सरकार ने देश से निर्वासित करके माण्डले भेज दिया। वहां से छूट कर आप फिर उड़ीसा और सी० पी० के अकाल पीड़ितों की सहायता में जुट गये। आपने इन अवसरों पर बड़े मार्मिक भाषण दिये। देश-सेवा की लगन से आप कांग्रेस की ओर झुक गये। १९०४ ई० के बम्बई की कांग्रेस में पास हुआ कि इङ्गलैण्ड में डेपुटेशन भेजा जावे। पञ्जाब से श्री लालाजी ही भेजे गये, आपका व्यय लाहौर की इन्डियन असोसियेशन ने सहा। यह व्यय भी आकर आपने आधा डी० ए० वी० कालेज को और आधा पञ्जाब में राजनीति शिक्षा के निमित्त दान दिया। इङ्गलैण्ड में आपने एक मास में ४० व्याख्यान दिये। इङ्गलैण्ड से लौट कर आपने दृढ़ धारणा प्रकट की कि स्वराज्य मांगने की नीति छोड़ कर हमें अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिये। वंग-विच्छेद के अवसर पर बंगाल में सत्याग्रह की

क्रान्ति हुई, आपने इस अवसर पर स्वदेशी आदि का भी भारी आन्दोलन उठाया।

पंजाब में एक गोरे पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट मि० स्पेंसर ने शिकार में सूअर मार कर अपने मुसलमान अर्दली को सूअर की लाश उठाकर बंगला ले चलने को कहा, दीन का खयाल कर उसने इनकार किया, इस पर गोरे साहब ने अर्दली को गोली मार दी। यह समाचार 'पंजाबी' पत्र में छापने से सम्पादक ला० जसवन्तराय एम० ए० पर सरकार ने मुक़दमा चलाया। इससे पंजाब में बड़ा जोश फैल गया। सरदार अजीतसिंह के जोशीले भज़नों ने पंजाब को जगा दिया था। इसी सम्बन्ध में १९१८ ई० में लालाजी को अजीतसिंह के साथ ही देश से निर्वासित कर दिया। बहुतों की धर-पकड़ हुई।

लालाजी माण्डले भेज दिये गये, इस देश-निर्वासन से सारे देश में भारी आन्दोलन मच गया जिसकी चर्चा पार्लियामेंट तक पहुँची। देश-निर्वासन के लिये लालाजी पर दोष लगाया गया था कि आप हिन्दुस्तानी फ़ौजों को भड़काते हैं। १९०७ ई० की ११ नवम्बर को आपको माण्डले से छोड़ दिया गया। जेल में आपने अनेक लेख व ग्रन्थ लिखे।

कैद से छूट कर लालाजी को लाहोर का जीवन न सुहाया, वे पुनः इङ्गलैण्ड गये। वहां आपने बेगार-प्रथा के अत्याचारों के प्रति तीव्र आन्दोलन उठाया। वहां प्राय. सभी स्थितियों के लोगों ने आपके व्याख्यान भाषणादि बड़े चाव से सुने। गुरु गोविन्द का जन्म-दिवस (पौष शुक्ला सप्तमी) इङ्गलैण्ड में ही बड़े उत्साह से मनाया। आपने वहां भारत सम्बन्धी अनेक ग़लत फहमियों को दूर किया।

इङ्गलैण्ड से लौट कर आपने १६०६ ई० में पंजाब में हिन्दू महासभा स्थापित कराई। १६१० में आप पुनः इङ्गलैण्ड गये। वहां आपने डाक्टर नवनिधिराय का विवाह एक इंग्लिश महिला से चर्च में न होने देकर संस्कारबिधि से कराया और महिला को शुद्ध कर आर्य बनाया।

२३ फरवरी १६११ को आपको पुत्र के देहावसान से बड़ा धक्का लगा। इसके पूर्व आपको जमाई का निधन भी सहना पड़ा था। इसी वर्ष आपने पंजाब में शिक्षा-लीग स्थापित की, शिक्षा-प्रसार के निमित्त अनेक स्कूल खोले।

उस समय दक्षिण अफ्रीका का सत्याग्रह चल रहा

था। उस सम्बन्ध में एक डेपुटेशन में आप फिर इङ्गलैण्ड गये, वहां से आप अमरीका गये। आपने समस्त संयुक्त प्रान्त अमेरीका की यात्रा की। लौट कर आपने अनेक ओजस्वी पुस्तकें लिखीं और छपवाईं जिनमें से 'यंग इन्डिया' (तरुण भारत) इतनी आपत्तिजनक समझी गई कि उसे सरकार ने भारत में नहीं आने दिया। अमेरिका में आपने एक 'इन्डियन होमरूल लीग' स्थापित की थी। अमेरीका में श्री डा० केशवदेवजी शास्त्री आपके सहयोगी थे। १९७७ में आपने 'वन्दे मातरम्' पत्र को जन्म दिया। आपका उद्देश्य था—

मेरा धर्म	हक परस्ती	(स्वत्वपूजा)
मेरा विश्वास	कौम परस्वी	(समाजसेवा)
मेरी पूजा	खलक परस्ती	(विश्वसेवा)
मेरा न्यायालय	मेरा अन्तःकरण	
मेरी जायदाद	मेरी कलम	
मेरा मन्दिर	मेरा हृदय	
मेरी उमंगे	सदा नवीन	
मेरी माता	आर्यसमाज	
मेरे धर्मपिता	ऋषि दयानन्द	

लालाजी का संदेश था कि—'हरेक भारतीय को समझ लेना चाहिये कि तब तक स्वराज्य प्राप्त नहीं होगा

जब तक स्वराज्य की कीमत न देंगे। जो जाति स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये सर्वस्व वारने के लिये उद्यत न हो स्वाधीनता प्राप्त नहीं कर सकती। पूर्व योरोपीयन महाभारत के बाद १६१६ में रौलेट एक्ट लागू हुआ था, बड़ी सनसनी फैली, सरकार का दमन चक्र बड़े वेग से चला। आन्दोलन से चिढ़ कर पंजाब सरकार ने लालाजी को फिर कैद में ले लिया। आपको १८ मास की कैद, ५००) रु० जुर्माना और ८ मास कड़ी जेल का दण्ड हुआ था। इस बार लालाजी का स्वास्थ्य बिगड़ गया, देह में क्षय रोग ने घर कर लिया। जिससे १३ अगस्त १६२३ को आप जेल से छोड़ दिये गये। इस समय समस्त देश ने प्रसन्नता से आपका स्वागत किया। सब देशों से लोग आपके दर्शनों के लिये उमड़ पड़े।

श्री लाला लाजपतराय बड़े दानशील पुरुष थे। डी० ए० वी० कालेज तथा अन्य कितनी ही संस्थाओं को आपने अनेक बार दान दिया, १६११ में हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस को भी १॥ हजार रु० दान दिया। अपनी जन्मभूमि जगरावां में आपने 'राधाकृष्ण हाईस्कूल' अपने पिताजी के नाम पर खोला। ऐसे देशभक्त, कर्मवीर, वाग्-विचक्षण, त्यागी, दानशूर, आत्मत्यागी के आगे मस्तक आदर से झुक जाता है।

आपको संस्कृत और हिन्दी से स्वभावतः प्रेम था, आपके अनेक लेख हिन्दी की उच्च कोटि की मासिक पत्रिका मर्यादा, अभ्युदय और सरस्वती में प्रकाशित हुए। आपकी स्थापित एजुकेशनल लीग के सब स्कूलों में पढ़ाई हिन्दी से होती थी। वि० १६१७ के हिन्दी साहित्य सम्मेलन को आपने ही लाहोर में निमन्त्रित किया था। आपने एक सूचना भी ऐसी दी कि जो लोग मुझ से पत्र-व्यवहार करें हिन्दी में किया करें, अन्य भाषा के पत्रों का मैं उत्तर न दूंगा।

आपने अनेक ग्रन्थों की रचना की, आपकी महापुरुषों के प्रति बड़ी भक्ति थी। आपने पं० गुरुदत्तजी एम० ए०, ग्वीसेप मेजिनी, गेरीबाल्डी, शिवाज़ी और श्री कृष्ण की जीवनी लिखी। एक पुस्तक आर्यसमाज और उसके प्रवर्त्तक दयानन्द के सम्बन्ध में अंग्रेजी में लिखी, यह लण्डन में छपी थी। आपने अमेरीका पर एक पुस्तक लिखी, एक 'यंग इन्डिया' और 'भारत का अंग्रेजों पर ऋण', 'भारत का राजनीतिक भविष्य' आदि कई बड़े महत्व की पुस्तकें भी लिखीं, जेल काल में आपने भारतवर्ष का इतिहास लिखा।

लाहोर में आप सत्याग्रही दल के नेता के रूप में

सभा के जलूस को ले जा रहे थे, जिसको पुलिस ने आगे बढ़ने से रोका और सार्जन्ट ने आप और आपके साथी अग्रगामी लोगों पर लाठी चार्ज कराया। इससे आपको बहुत घातक प्रहार सहना पड़ा, कुछ दिन के पश्चात् इसी आघात से आपका देहावसान हो गया। आपकी मृत्यु का समाचार बड़े वेग से सारे भारतवर्ष में बड़े विक्षोभ से सुना गया। इस प्रकार स्वदेश की बलि-वेदि पर एक कर्मण्य त्यागी महापुरुष बलि होकर अमर हो गया।

श्री डा० केशवदेवजी शास्त्री एम० डी०.

एक संस्कृतज्ञ विद्वान् होकर भी किस उत्साह, उद्योग से ख्याति, लोकसेवा, देशसेवा और समाज-सेवा में अग्रणी हो सकता है, शास्त्रीजी उसके उत्तम उदाहरण हैं।

आपका लोक दृष्टि से उज्ज्वल जीवन तभी से शुरू होता है जब से आपने शास्त्री परीक्षा पास कर ली। शास्त्री होने के उपरान्त आप आयुर्वेद सीखने के लिये कलकत्ता गये। वहां आपके उद्योग परिश्रम, नियम पालन, समय पालन के स्वभाव पर आपके आचार्य बहुत प्रसन्न थे। उनको अपने शिष्य में पूर्ण सफलता अंकित प्रतीत होती थी।

आप अपनी धुन के बड़े पक्के थे, उसके पीछे आप सर्वस्व त्याग कर सकते थे, धनोपार्जन करने को एक अति तुच्छ कला समझते थे। आपने जयपुर राज्य में केवल एक रोगी की चिकित्सा से ४००) रु० प्रतिदिन

लेकर २ लाख रुपये कमाये । परन्तु जीवन के विशेष प्रोग्राम में बाधा आते देख आपने घर त्याग दिया, और समस्त जायदाद दूसरों को सौंप आये, रेलवे के दफ़्तर की नौकरी में वेतन वृद्धि होने को थी तो भी आप नौकरी पर लात मार कर चले गये ।

आयुर्वेद शिक्षण के पश्चात् आपने काशी में कार्य किया, वहां अनेक नेताओं से परिचय लाभ किया, लोकसेवा के साथ २ वैद्यक-आयुर्वेद उनके धनोपार्जन का साधन मात्र था । काशी में आपने समाजसुधार का कार्य हाथ में लिया । वहां के आर्य विद्यार्थियों में आपने विशेष जीवन फूंक दिया था, अनेक निर्धन विद्यार्थी आपसे आर्थिक सहायता पाते थे ।

आपने काशी से प्रथम हिन्दी का 'नवजीवन' पत्र निकाला, स्वतन्त्र और उदार विचारों से पत्र लोकप्रिय हो गया । अनेक नवयुवक, नवयुवतियां आपसे परामर्श लेते रहते थे । अनमेल विवाह के गढ़े में बचने से उन्होंने अनेक नवयुवक युवतियों को बचाया ।

आर्य कुमार सभाओं और भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की स्थापना ने आपको नवयुवकों का विशेष पथ-प्रदर्शक बना दिया । राज्यरत्न मा० आत्मारामजी अमृत-

सरी को आप पर बड़ी २ आशायें थीं। वे कहते थे कि आप गुरुदत्तजी एम० ए० के विदेशों में आर्य धर्म प्रचार की इच्छा को पूर्ण करेंगे।

आपके सत्सङ्ग से आर्य नवयुवकों को बड़ा उत्साह मिलता था। वे उनमें सामाजिक जीवन की बिजली फूंकते रहते थे। आप कभी किसी दल के न थे, प्रत्युत प्रत्येक दल आपको स्नेह दृष्टि से देखता था। वे दूसरों की आलोचना करने की अपेक्षा काम करना अच्छा समझते थे। आप कर्मण्यता के उपासक थे वे गलतफहमी से कभी न घबराते, न उसको दूर करने का यत्न करते थे। आप आशावादी थे, सदा प्रसन्न रहते थे। उन्हें वैदिक सिद्धान्तों पर अटल विश्वास था।

आप शिकागो विश्वधर्म-सम्मेलन में आमन्त्रित होकर आर्यसमाज के प्रतिनिधि रूप से गये थे। आपने वहां वैदिक सिद्धान्तों का खूब प्रचार किया। आप गुण कर्म स्वभावानुसार विवाह करने के बड़े पक्षपाती थे। इसी से प्रेरित होकर आपने एक अमेरिकन महिला से विवाह किया, आप शिकागो से M. D. की डिग्री लेकर भारत लौटे। आपने अमेरिका की पनामा प्रदर्शिनी में भी सन् १९१४ में भाग लिया था।

देहली में आपने विद्युत् चिकित्सा का सेनिटोरियम खोला, रोगी दूर २ से चिकित्सा के लिये आते थे। इस कार्य में आपने बड़ा यश और द्रव्य भी कमाया। आप देहली आर्यसमाज के प्रधान व सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के ६ वर्ष तक मन्त्री रहे। मथुरा जन्म शताब्दी की सफलता में आपका विशेष उद्योग था। खेद है कि आप इस लोक से अकस्मात् उठ गये। भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् के जन्मदाता होने से आपका नाम आर्य समाज और आर्य कुमार सभाओं के इतिहास में अमर हो गया है।

श्री महात्मा हंसराज

श्री महात्मा हंसराज सादगी और साधुता की मूर्त्ति, शिक्षणकला के विशेषज्ञ, श्रद्धा, सद्भाव और सदाचार के प्रशान्त आचार्य थे। आप त्याग के आदर्श थे।

आपका जन्म पंजाब के होशियारपुर जिले में बेजवाड़ा नामक ग्राम में सन् १८६१ में हुआ। आपके पिताजी का शुभ नाम श्री चुन्नीलाल मल्ला व माता का नाम श्रीमती हरदेवीजी और भाई का नाम श्री मुल्कराज था।

आप अभी दस वर्ष के भी न हुए थे कि आपके पिताजी का देहावसान हो गया। देहान्त से पूर्व आपके पिता कह गये थे कि मेरे दोनों पुत्र भाग्यवान्, बड़े होनहार होंगे, मुझे कोई कह रहा है कि गरीबी अब अधिक देर न रहेगी। हमारे परिवार में अज्ञान भी सदा न रहेगा। तदनुसार म० मुल्कराज ने बैंक संचालन में

और म० हंसराजजी ने लोकसेवा और शिक्षा-कार्य में अमर ख्याति प्राप्त की।

पिताजी की मृत्यु के पश्चात् बड़े भाई श्री मुल्कराज ने तो लाहौर में बैंक में नौकरी कर ली और आपने लाहौर में मिशन स्कूल में अध्ययन करना शुरू किया।

आप स्वभावतः बड़े नम्र, मधुरभाषी और धर्म-परायण विद्यार्थी थे, अपने पूर्व पुरुषों की निन्दा को क्षण भर भी सह न सकते थे। एक दिन ईसाई हैड मास्टर ने इतिहास पढ़ाते हुए कहा—'प्राचीन आर्य वृक्षों और पत्थरों की पूजा किया करते थे।' इसे आपने अपनी आर्य जाति का अपमान जान न सहा और तुरन्त हिन्दू धर्मशास्त्र का प्रमाण देकर कहा कि 'हिन्दू शास्त्रों में एक ईश्वर को छोड़ कर अन्य की पूजा करना पाप बतलाया है।' हैड मास्टर निरुत्तर हो गये, क्रोध से बोले—'हंसराज ! स्कूल से बाहर निकल जाओ।' आत्माभिमानी नवयुवक हंसराज फ़ौरन स्कूल से बाहर चले गये और जब तक स्वयं हैड मास्टर ने उनको पुनः स्कूल प्रवेश की आज्ञा नहीं दी वे स्कूल में न गये। विद्यार्थी काल में भी आप पर ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों का बड़ा प्रभाव था।

आपने सन् १८८० ई० में इंट्रेंस पास कर लिया और लाहोर के गवर्नमेंट कालेज में शिक्षा पाने लग। यहां आपको सत्संगति श्री ला० लाजपतराय, श्री पं० गुरुदत्त विद्यार्थी की सहपाठी रूप में हुई। तीनों परम मित्र, एक विचार के और ऋषि के अनन्य भक्त थे। सन् १८७७ में लाहोर में आये थे। उसी साल वहां आर्यसमाज की स्थापना हुई थी। श्री ला० साईंदास आर्य-समाज के प्रधान थे, आपका इन पर अच्छा प्रभाव पड़ा। लाहोर आर्यसमाज ने एक अंग्रेज़ी साप्ताहिक पत्र निकाला जिसके सम्पादन का काम श्री पं० गुरुदत्तजी व आप पर था।

३० अक्टूबर १८८३ में श्री स्वामी दयानन्दजी का देहावसान हुआ था, उनके लिये उचित स्मारक बनाने का विचार आर्य पुरुषों में उठा। निश्चय हुआ कि दयानन्द ऐंग्लो वैदिक (डी० ए० वी०) कॉलेज खोला जाय जिसमें हिन्दी साहित्य, अंग्रेजी साहित्य और संस्कृत का प्राचीन साहित्य और वेदों का अध्ययन कराया जाय।

आपने इसके लिये अपनी सेवा भी विना वेतन के ही समर्पित की, भाई से ५०) रु० मासिक सहायता ले

लेते थे। कालेज के लिये ३२०००) रु० तो मिल गये थे। आर्य सज्जन निराश थे तो भी आपने बड़ा उत्साह दिखाया, १८८६ ई० में डी० ए० वी० स्कूल खुल गया और आप वहां अवैतनिक रूप से हैड मास्टर का कार्य करने लगे। बाद में यह स्कूल क्रम से एम० ए० तक का कॉलेज हो गया और आप प्रिंसिपल नियत हुए। हिन्दू विश्व विद्यालय बनारस के संस्थापक श्री पं० मदनमोहन मालवीयजी के समान उनसे पूर्व डी० ए० वी० कालेज के संस्थापक व संचालक श्री म० हंसराजजी का नाम अमर हो गया। अब तो इस कॉलेज के साथ आयुर्वेद और औद्योगिक कॉलेज चल रहे हैं। साथ ही एक अनुसंधान विभाग भी है। जिस मितव्ययिता से इस कॉलेज के संचालन में कार्य किया गया है उससे संचालकों के त्याग का आदर्श दृष्टिगोचर होता है। स्वयं महात्मा हंसराज अपने निर्वाहार्थ आजीवन सदस्य रूप से ७५) रु० प्रति मास लेते रहे। आपने अपने सहयोगियों में भी यही त्याग भाव जागृत कर दिया था।

श्री ला० साईंदास के पश्चात् आर्यसमाज के प्रबन्ध और संचालन का कार्य भी आप पर ही पड़ा। उस समय आपकी उम्र २५ वर्ष की थी।

आप संस्कृत साहित्य के भी अच्छे विचारक थे।

डा० ड्यूप आपकी विद्वत्ता पर मुग्ध थे। २५ साल कार्य करने के पश्चात् आपने १६११ ई० में प्रिंसिपल पद से मुक्ति प्राप्त कर ली। बाद १६१८ तक कॉलेज की प्रबन्ध-समिति के अध्यक्ष रहे और फिर इसे भी त्याग कर धर्मप्रचार के कार्य में लग गये। अनेक वर्षों तक आप आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा पंजाब, सिन्ध, बिलोचिस्तान के प्रधान रहे।

१६१४ में आपके ज्येष्ठ पुत्र ला० बलराज एम० ए० में पढ़ते थे, लाहोर षडयन्त्र केस में गिरफ्तार किये गये, पुलिस आपके घर से वेदादि पुस्तकें तक उठा ले गई और उसी वर्ष आपकी धर्मपत्नी का देहावसान हो गया, आपने ये दोनों आपत्तियें बड़े धैर्य से सहीं।

स्वदेशी वस्त्र धारण करने और स्वदेशी वस्तु को उपयोग करने की पवित्र भावना आप में ऋषि दयानन्द के उपदेशों से तभी से जमी थी जब से अभी लोग स्वदेशी के नाम से भी परिचित न थे।

१६३८ ई० के अक्टूबर से आप बीमार पड़े। १४ नवम्बर १६३८ को रात्रि को आपका देहावसान हो गया। अन्त काल में भी आपने बड़ी सचेत दशा में प्रसन्नतापूर्वक 'ईश्वर तेरी इच्छा पूरी हो' कह कर गायत्री

मन्त्र और 'ओ३म्' का जप करते २ प्राण त्याग किये। उस समय आपकी आयु ७८ वर्ष की थी।

आपके जीवन काल में ही हैदराबाद के सत्याग्रह संग्राम का निश्चय हो चुका था। अगले ही मास शोलापुर आर्य-सम्मेलन होकर जनवरी १९३९ में आर्य सत्याग्रह बड़े वेग से आरम्भ हो गया था। आपके शुभ आशीर्वाद और आदेश को लेकर ही सत्याग्रह-संग्राम के ३य सर्वाधिकारी श्री खुशहालचन्द खुरसन्द हैदराबाद निजाम स्टेट में प्रचार करने के लिये शोलापुर पहुँचे थे और ६०० सत्याग्रहियों के साथ सत्याग्रह-संग्राम में जूझ गये थे।

महात्मा श्री नारायण स्वामी

आर्य जगत् क्या, समस्त भारतवासी श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज के शुभ नाम तथा तेजस्वी काम से भली भांति परिचित हैं। सत्तर वर्ष की वृद्धावस्था में भी आप में कार्यशक्ति नौजवानों से भी अधिक है। आपकी कार्यतत्परता, कार्य को नियम से करना आदि गुण प्रसिद्ध हैं। सत्याग्रह सम्मेलन, (शोलापुर) की सफलता का श्रेय बहुत कुछ आपको है।

श्री स्वामीजी का जन्म १८६९ ई० में हुआ। संन्यास-आश्रम में प्रवेश से पूर्व श्री महात्माजी का कार्य-क्षेत्र संयुक्तप्रान्त ही रहा। युवावस्था से ही आप समाज-सेवा में संलग्न हैं। लगभग ४७ वर्ष से आप देश, जाति तथा धर्मकी सेवा कर रहे हैं। ऋषि दयानन्द के बाद जिन महान् आत्मा ऋषिभक्तों ने वैदिक धर्म-प्रचार तथा प्रसार का काम अपने हाथ में लिया, स्वामीजी उनमें से एक हैं। आप संयुक्तप्रान्त की आर्य प्रतिनिधि

सभा के अन्तरङ्ग सदस्य, उपमन्त्री, मन्त्री आदि अनेक उत्तरदायित्वपूर्ण पदों को सुशोभित करते रहे हैं।

संयुक्तप्रान्त में गुरुकुल स्थापन करने का कार्य भी आपने ही अपने हाथ में लिया। आप ही ने सब से पहले यू० पी० प्रान्त की प्रतिनिधि सभा के सम्मुख गुरुकुल खोलने का प्रस्ताव किया। उस समय संयुक्तप्रान्त के आर्य सामाजिक भाई गुरुकुल खोलने में अपने आपको असमर्थ समझते थे, किन्तु जब सभा के बृहदाधिवेशन में आपने ओजःपूर्ण व्याख्यान दिया, तो सभी का संकोच जाता रहा, सभी उत्साह से भर गये और गुरुकुल खोलने का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

गुरुकुल के लिए जब धन का प्रश्न आया तो आपने सारे प्रान्त में घूम घूम कर पुष्कल धन इकट्ठा कर दिया। संयुक्तप्रान्त का गुरुकुल पहले सिकन्दराबाद में था (अब भी वहां एक गुरुकुल है), १९०६ ई० में वह फ़र्रुखाबाद में लाया गया। १९११ ई० में देशभक्त दानवीर राजा श्री महेन्द्रप्रताप ने वृन्दाबन में गुरुकुल के लिए पर्याप्त भूमि दान की। तब श्री महात्मा नारायणप्रसादजी (पूर्वाश्रम में स्वामीजी का यही शुभ नाम था) ने तीन मास का अवकाश ले लिया और वृन्दावन जा पहुँचे और रात

दिन एक करके आपने सब आवश्यक मकान आदि तय्यार करा दिये और गुरुकुल सभा के निश्चयानुसार वृन्दावन लाया गया।

उन दिनों गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता श्री पं० भगवान्-दीनजी थे। वे रुग्ण हो गए और इस कारण गुरुकुल से चले गए। उनके स्थान पर सभा ने आप ही को मुख्याधिष्ठाता नियत किया। उस समय आपकी नौकरी की अवधि समाप्त होने को एक वर्ष शेष था, उसके बाद आपको पेन्शन मिल जाती। कई शुभचिन्तकों ने आपको यह आग्रहपूर्वक सम्मति दी कि आप अभी नौकरी न छोड़ें और डाक्टरी सार्टिफ़िकेट देकर Invalid pension (दुर्बलावस्था की पेन्शन) ले लें। आपको यह सम्मति पसन्द न आई। आपकी आत्मा ने धर्म के लिये अधर्म का सहारा लेना उचित न जाना। आपने गुरुकुल की सेवा के लिये सरकारी सेवा से त्याग-पत्र दे दिया। इसे कहते हैं 'धर्मनिष्ठा'।

आपके गुरुकुल में आने के बाद गुरुकुल की बहुत उन्नति हुई। गुरुकुल से स्नातक भी आपके समय में निकलने लगे, धन आदि की दृष्टि से भी गुरुकुल खूब बढ़ा।

१९१९ ई० में आपका वयः-क्रम पचास वर्ष का हो गया। तब आपने चतुर्थ आश्रम—संन्यास की तैय्यारी के लिए गुरुकुल के कार्य-भार से अवकाश ग्रहण कर लिया। संयुक्तप्रान्त के आर्य भाइयों ने आपकी सेवाओं की भरपूर सराहना की और आपकी सेवा में एक अभिनन्दन-पत्र समर्पित किता।

गुरुकुल से विदा होकर आपने नैनीताल के समीप रामगढ़ में एकान्त और सुरम्य स्थान में अपनी कुटिया बनाई, उसका नाम 'नारायणाश्रम' रखा। तीन वर्ष वहां एकान्त में रह कर आपने तप और स्वाध्याय किया। उसके बाद प्राजापत्य इष्टि के द्वारा सर्वस्वमेध याग करके संन्यासाश्रम में प्रवेश किया।

दीक्षा लेने से पूर्व कुटिया समेत जो कुछ आपके पास था, वह सब संयुक्तप्रान्त की आर्यप्रतिनिधि सभा को दे डाला।

अप महात्मा नारायणप्रसादजी श्री नारायण स्वामी होकर जनता की सेवा में तत्पर हुए।

संन्यासाश्रम में प्रविष्ट होने के पीछे कई महत्त्वपूर्ण कार्य आपने किए। मथुरा में श्रीमद्दयानन्द-जन्म-शताब्दी-महोत्सव की सफलता का सम्पूर्ण श्रेय आपको है।

श्री स्वामी श्रद्धानन्दजी के पश्चात् सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की बागडोर आपने संभाली। तब से आप ही उस सभा के प्रधान चले आ रहे थे। गतवर्ष आपके इन्कार करने पर श्री बा० घनश्यामसिंहजी गुप्त को प्रधान पद दिया गया।

आपने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। आप उर्दू, हिन्दी के प्रौढ़ लेखक हैं। अंग्रेजी भाषा पर भी आपका पर्याप्त अधिकार है।

सुदीर्घ छः वर्षों तक आपने निज़ाम राज्य से आर्यों के कष्ट निवारणार्थ पत्र-व्यवहार किया, सम्पूर्ण उपायों को वर्ता। किन्तु निज़ाम सरकार टस से मस न हुई। तब आपने विवश होकर सभा को सत्याग्रह करने का परामर्श दिया और उसके लिए एक वर्ष का अवसर दिया। शोलापुर सत्याग्रह-सम्मेलन में सत्याग्रह का प्रस्ताव स्वीकृत हुआ, आप ही प्रथम सर्वाधिकारी (डिक्टेटर) नियत हुए। सत्याग्रह चलाने और अपने उत्तराधिकारी नियत करने आदि के सम्पूर्ण अधिकार आपको दिए गए।

सत्याग्रह-संग्राम के काल में अदम्य आवेश से उमड़ते आर्य जगत् की बाढ़ को नियम में रखने में आपका धैर्य

अपूर्व था। सत्याग्रह काल में आपने हैदराबाद रियासत की कठोर से कठोर यातना सहीं, आपने दो बार बड़ी गंभीरता से सत्याग्रह किया और जब तक रियासत के निज़ाम ने आर्य जनता के धार्मिक अधिकार नहीं मान लिये सत्याग्रह-संग्राम स्थगित नहीं हुआ।

इस समय आपकी वयस ७१ वर्ष की है, आप आर्य जगत् की कर्मण्य जीवित जागृत विभूति हैं, आपकी योग-साधना में विशेष गति है, योग और उपनिषदों पर आपने जो ग्रन्थ रचे हैं बड़े ही मनन करने योग्य और चिरगंभीर स्वाध्याय के परिणाम हैं।

आपकी प्रकृति गंभीर, शान्त और विचारपूर्ण है। परमेश्वर आपको चिरजीवित रखे।

श्री स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज

आर्य जगत् में वीतराग संन्यासी श्री सर्वदानन्दजी त्याग, तप, धर्मप्रचार और ज्ञान की साक्षात् मूर्त्ति हैं। आपका वृद्ध शरीर और ज्ञान भरी वाणी आत्मा में शान्ति उत्पन्न करती है। आपका ३५ वर्ष का जीवन धर्मोपदेश और प्रचार में ही व्यतीत हुआ है।

आपका जन्म सं० १९१२ में पंजाब के प्रसिद्ध प्रान्त होशियारपुर जिला बसीकलां ग्राम में श्री पं० गंगाविष्णुजी कुलीन ब्राह्मण के गृह में हुआ। कई पीढ़ियों से कुलपरम्परा में वैद्यक का कार्य होता था। आप (पूर्व नाम श्री पं० चन्दूलाल) बड़े शिवभक्त थे, शिवलिंग की पूजा बहुत श्रद्धा-भक्ति से करते थे। आप श्रद्धा-भक्ति से इतने फूल चढ़ाते थे कि शिव का लिंग ऊपर तक फूलों से ढक जाया करता था।

एक दिन क्या हुआ कि आप अनेक प्रकार के फूल पत्रों से शिवलिंग को सजा कर गये और एक कुत्ते ने मंदिर में घुस कर सारी शोभा बिगाड़ दी और फूल

बतासा नैवैद्य चढ़ा था, सब चाट गया और मूत्र से मूर्त्ति को भ्रष्ट कर दिया, ऊपर से पानी के कलसे को भी चाट लिया। आपने शिवजी का ऐसा अनादर होता देख चित्त में बड़ा खेद अनुभव किया, आपके चित्त में बड़ी प्रबल विचार क्रान्ति उठी, आपने फिर मन्दिर की ओर मुंह न किया। उदास वातावरण ने क्रान्तिपथ के इस यात्री का स्वागत किया और शिवरात्रि के दृश्य से उद्विग्न स्वामी दयानन्द के तुल्य आप भी शिवपूजन को छोड़ निराकार ब्रह्म की खोज के पथ पर चल पड़े।

वैद्यक और हिकमत आप अच्छी जानते थे, इसी प्रसंग से आपको फ़ारसी का अच्छा अभ्यास था। शिव से रुचि हट कर आप वेदान्त की सी लहर में फ़ारसी के ग्रन्थ बोस्तां, मौलाना रूमी और बूल अली कलन्दर आदि के ग्रन्थ पढ़ने लगे, वेदान्त के विचारों के प्रवाह ने आपको घर-बार से मुक्त कर अनन्त पथ का यात्री कर दिया। आपकी उस समय ३२ वर्ष की अवस्था थी। आप अच्छे गुरु की तलाश में नर्वदा नदी के तटों पर घूमते रहे, पैदल ही नर्वदा के तटों के सैकड़ों ग्रामों, अरण्यों पर्वतों और घाटियों को पार किया। इन्दौर, भूपाल के बीच के तटों में आपने एक वेदान्ती संन्यासी के आश्रम में रह कर कुछ शान्ति पाई, उसी से आपने संन्यास की

दीक्षा ली। वहां कुछ दार्शनिक ग्रन्थों का भी विचार किया। वहां से आपने तीर्थों का भ्रमण शुरु किया। चार वर्षों में प्रायः समस्त तीर्थ घूम डाले। आपने अध्यात्म विचार में मग्न रह कर अनेक दिन बिना अन्न के ही व्यतीत किये, कहीं कुछ मिला तो खा लिया, न मिला तो न सही।

इसी प्रकार आप उदयपुर भी आये, वहां से मथुरा आये, वहां कई अवधूत आपके संग हो लिये। वहां एक दो बार तो एक सेठ ने आपकी बड़ी आव-भगत की, परन्तु फिर उसने भी टाल बतादी और हाथ जोड़ लिये।

स्वामीजी चित्रकूट में कई मास ठहरे, वहां शरद् ऋतु में भी वस्त्ररहित ही रहते थे। इस तपस्या ने जहां आत्मा की शक्ति की वृद्धि की वहां शरीर पर हानि भी की, आपकी छाती और कटि में चिरकालिक पीड़ा बैठा दी।

वहां आपका एक भक्त सेवक एक गांव का ठाकुर आर्यसमाजी था। उसने औषध सेवादि द्वारा आपकी बहुत प्रेम से सेवा-शुश्रूषा की थी। बीमारी से आपको मुक्त कर दिया था। नीरोग होकर जब स्वामीजी चित्रकूट से चलने लगे तो ठाकुर ने बड़े प्रेमपूर्वक 'सत्यार्थप्रकाश' की पुस्तक रेशमी वस्त्र में लपेट कर विदाई के समय भेंट की और आदि से अन्त तक पढ़ने का आग्रह किया।

स्वामीजी ने सेवक की भेंट ले ली और भक्त की

भेट का खूब पर्यालोचन किया। आपने सत्यार्थप्रकाश का नाम तो सुना था, परन्तु वेदान्ती होने से उनको उसके प्रति पर्याप्त घृणा था, परन्तु सेवक के आग्रह से आपने इसको समूचा पढ़ डाला। इस ग्रन्थ ने आपके विचारों को बिलकुल बदल डाला और महर्षि दयानन्द के आप दृढ़ भक्त हो गये। आप जहां वेदान्त के विचारों में मग्न रहते थे, अब ऋषि दयानन्द की शैली पर जन-सुधार के व्याख्यान देने लगे। मेलों, उत्सवों, तीर्थ आदि स्थानों पर सैकड़ों, सहस्रों की संख्या आपके भाषण पर मुग्ध होकर आपको घेर घेर कर खड़ी खड़ी व्याख्यान का आनन्द लेती थी। आपकी मधुर मृदु खण्डन-शैली लोगों पर बड़ा प्रभाव करती थी। १६०६–७ ई० में आप गुरुकुल कांगड़ी के उत्सवों पर आये, वहां गंगा की रेती में आपके व्याख्यानों की झड़ी लग गई, जनता के व्याख्यान-प्रेम ने आपको व्याख्यान वेदि पर खेंच लिया। आप आर्यसमाजों के उत्सवों के अवसरों में बड़े आग्रह से बुलाये जाने लगे, उस समय स्वामीजी काली-कम्बली को कमर में अंगोछे से बांधे रहते थे। यही आपका सर्वस्व था। इससे अधिक प्रपंच अब भी आप नहीं रखते।

आपने मथुरा में एक छोटी सी पाठशाला स्थापित की थी, कुछ उत्साही युवक संन्यासी व विद्यार्थी उसमें

रहते थे, वे बाद में अलीगढ़ और फिर हरदुआगंज में काली नदी के तट पर विरजानन्द साधु आश्रम के नाम से स्थापित हुई। इसी आश्रम के एक विद्यार्थी-रत्न श्री पं० धुरेन्द्र शास्त्री हैं जिनको आर्यजगत् में 'राजगुरु' पद प्राप्त हुआ। श्री स्वामीजी ने मथुरा जन्म-शताब्दी के अवसर पर साधु महात्माओं के सत्कार में प्राप्त दान के अवशेष अंश से एक उत्तम विद्यालय खोलने का विचार किया था। आप चाहते थे कि काशी में एक अच्छा विद्यालय हो जिसमें आर्ष शैली से छात्रों को शास्त्रों की शिक्षा हो परन्तु वह वहां न खुल सका।

उसी संकल्प-मनोरथ से १९३९ ई० को श्रीमद्-दयानन्द साधु आश्रम अजमेर के उत्सव पर आपने 'सरस्वती विद्यालय' की स्थापना की, इसमें ५ विद्यार्थियों को ही ५ वर्षों में शास्त्र-पारंगत करने की योजना चल रही है। आपके सुयोग्य शिष्य स्वामी अमृतानन्दजी व्याकरण के उत्तम विद्वान् इस कार्य में संलग्न हैं।

आर्यसमाज के प्रचार की लगन ने स्वामीजी को संस्कृताध्ययन की ओर प्रवृत्त किया। आपने यत्नपूर्वक संस्कृत व्याकरण, दर्शन के ग्रन्थों का भी अभ्यास किया। आपको उपनिषदों का अच्छा अभ्यास है।

इस समय श्री स्वामीजी की अवस्था ८५ वर्ष की

है। आपको समय २ पर शरीर पर कई घातक आघात सहने पड़े। जिनसे स्वामीजी के अंगों में कुछ निर्बलता व पीड़ा बैठ गई है तो भी आप अभी तक प्रचार कार्यों में निर्द्वन्द्व ही घूमते और कोई सेवक साथ नहीं रखते हैं।

२८ जुलाई १६४० में आपके कर कमलों से अजमेर में डी० ए० वी० कृषि-उद्योग कालेज का शिलारोपण बड़ी धूमधाम से किया गया, जो डी० ए० वी० हाई स्कूल अजमेर का बृहत् रूप होगा।

आपकी वाक्-शक्ति और व्याख्यान की शैली बड़ी चित्ताकर्षक, प्रभावशाली और उदात्त होती है, आप प्रायः सामाजिक, आध्यात्मिक विवेचन से ऐसा शास्त्रीय उपदेश देते हैं कि सहस्रों की जनता आपके व्याख्यानों को मन्त्रमुग्ध के समान सुना करती है। आपके व्याख्यानों के सुनने के लिये जनता सदा उत्सुक रहती है। आपका समस्त जीवन प्रचार में ही व्यतीत हुआ है और इस वृद्ध दशा में भी प्रचार यात्रा के प्रोग्राम लगे ही रहते हैं।

आपके अनेक व्याख्यानों के संग्रह पुस्तकों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी प्रसिद्ध पुस्तक 'सन्मार्ग दर्शन' है जिसमें संस्कृत में छोटे २ सूत्र हैं और उनकी व्याख्या विस्तार से हिन्दी में की गई है। 'कल्याण मार्ग' और 'आनन्द संग्रह' ये दो ग्रन्थ भी बड़े उत्तम हैं।

राजगुरु श्री पं० धुरेन्द्रजी शास्त्री

श्री पं० धुरेन्द्र शास्त्री श्री स्वामी सर्वदानन्दजी के प्रधान शिष्य एवं आर्य जगत् में जीवित-जागृत स्फूर्त्तिमान् तपस्वी, त्यागमूर्त्ति पुरुष हैं।

आपका जन्म मथुरा जिले के एक छोटे से 'पानी' नाम गांव में हुआ, आपने पंजाब (मुलतान) में अध्ययन कर पंजाब की 'शास्त्री' परीक्षा पास की, काशी और जयपुर में दर्शन शास्त्रों का अध्ययन किया और श्री स्वामी सर्वदानन्दजी के आदेश से धर्मसेवा में लग गये।

आपका आजन्म ब्रह्मचारी रहने का संकल्प है, आप त्यागी, तपस्वी, विद्वान्, व्याख्याता और उत्तम लेखक हैं, सच्चाई के भक्त और ढोंग के घोर विरोधी हैं।

कार्यक्षेत्र में आते हुए आपका कौशल प्रथम १९२३ ई० में मलकाना शुद्धि आन्दोलन में चमका। वहां आपको सर्व प्रथम स्वामी श्रद्धानन्दजी और म० हंसराजजी का आशीर्वाद प्राप्त हुआ। शुद्धि-आन्दोलन की सेवा से ापकी ओर जनता का ध्यान खिंचा। बाद में आप

बिहार प्रान्त में कार्य करने लगे। पटना ही आपके कार्यक्षेत्र का प्रधान केन्द्र था।

कांग्रेस के आन्दोलन के अवसर पर आपने हज़ारी बाग (बिहार) की जेल में वीर सत्याग्रही के रूप में कृष्ण मन्दिर का अनुभव लाभ किया।

आपके त्याग, निर्भयता और धर्म-तत्परता से अनेक नवयुवक राजा प्रभावित हो आपके शिष्य हुए। काला-कांकर नरेश श्री अवधेशसिंहजी को आपने ही आर्य-समाज में दीक्षित किया।

अनेक अन्य राजाओं ने आपको अपना गुरु माना और राजाधिराज श्री शाहपुराधीश ने १६३६ ई० में आपको 'राजगुरु' की पदवी प्रदान की। आप उनके युवराज को कई वर्ष धर्मशिक्षा देते रहे।

आप सदा एक धार्मिक सैनिक के रूप में धर्मसेवा करते रहने में प्रसन्न रहते हैं। अनेक बार यू० पी० आर्य प्रतिनिधि सभा ने आपसे मन्त्रिपद लेने का आग्रह किया, परन्तु आप टालते रहे। ई० १६३८ के दिसम्बर मास में हैदराबाद दक्षिण निज़ाम राज्य में आर्य सत्याग्रह-संग्राम छिड़ने पर आपने सत्याग्रही सैनिक के रूप में अपने को प्रस्तुत किया था, परन्तु संयुक्तप्रान्त आर्य प्रतिनिधि सभा ने आपको अपने प्रान्त का प्रथम एवं

सार्वदेशिक की ओर से ४र्थ डिक्टेटर बना कर सत्याग्रह संग्राम में भेजा। इधर ८ अप्रैल सन् १९३९ ई० को आप आर्य प्रतिनिधि सभा यू० पी० के प्रधान चुने गये।

डिक्टेटर के रूप में आपने प्रान्त भर में तूफानी दौरा किया और संग्राम के निमित्त ३० सहस्र से अधिक द्रव्य संग्रह किया। इधर पूर्व के सर्वाधिकारी श्री खुशहालचन्द जी के जेल चले जाने के कारण आपको शीघ्र शोलापुर जाना पड़ा और बड़ी वीरता से सत्याग्रह कर कैद हो गये, बड़ी सन्नता से सब प्रकार की जेल यातनायें भोगीं। प्रलोभन रूप में जेल के अधिकारियों ने आपको अनेक सुविधायें देनी चाहीं, परन्तु आपने अपने साथ सामान्य सत्याग्रही कैदी का व्यवहार ही स्वीकार किया।

कैदखाने में भी आप सत्याग्रहियों के दुःख-सुखों का बड़ा ध्यान रखते थे, छोटी २ बातों के लिये बड़े से बड़े अफ़सर को डपट देते थे और तर्कबुद्धि से उसका दोष उसको अनुभव करा कर सीधे रास्ते पर ले आते थे। क्रूर से क्रूर अफ़सर आपकी सत्य निष्ठा से दबता था।

आप अपने जीवन को आर्यसमाज के लिये मानते हैं। "समाज जीता है तो हम जीते हैं समाज मर गया तो हम मर जावेंगे।"

सत्याग्रह को प्रस्थान करने के पूर्व आप अपने साथ

३०० से अधिक सत्याग्रहियों की बड़ी स्पेशल लेकर रवाना हुए जिसका प्रबन्ध कर्मवीर पं० जियालालजी की देख रेख में आर्यसमाज अजमेर की ओर से किया गया था और आगे चल कर ५०० सत्याग्रहियों की एक स्पेशल ट्रेन बना कर बड़ी धूमधाम से आपने निज़ाम रियासत में सत्याग्रह के लिये प्रवेश किया था। जिस दिन आपने सत्याग्रह किया था उसी दिन समस्त केन्द्रों से १०५६ सत्याग्रहियों ने जेल में आत्माहुति दी थी।

सत्याग्रह संग्राम के विजय के पश्चात् आपने शोलापुर में उपदेशक-विद्यालय का कार्य संभाला है, आप उसके आचार्य बने हैं। उसका कार्य सुचारु रूप से चलने लगा है। उसकी सफलता का श्रेय आपको ही है।

मई सन् १९४० में इन्दोर सम्मेलन में आप अखिल भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् के प्रधान निर्वाचितहुए हैं।

आपकी भव्य उन्नत मूर्त्ति, छरहरा शरीर, तीक्ष्ण मधुर स्वर और सौम्य विशाल स्निग्ध भाल देखकर आपके तदनुरूप गुणों की छाप दर्शकों पर तुरन्त बैठ जाती है, ईश्वर आपको चिरायु करे।

॥ इति ॥

धार्मिक-शिक्षा

दस भागों में पूर्ण

[लेखक—श्री पं० सूर्यदेवजी शर्मा, सिद्धान्तशास्त्री, साहित्यालंकार, एम० ए०, एल० टी० हैडमास्टर डी० ए० वी० हाईस्कूल, अजमेर]

आर्यकुमारों, आर्यबालकों को क्रमशः श्रेणियों में कक्षा क्रम से धर्म-शिक्षा देने के लिये 'धार्मिक-शिक्षा' के दस भागों का निर्माण किया गया है। धर्मशिक्षा के निमित्त ये पुस्तकें इतनी उपयोगी सिद्ध हुई हैं कि प्रायः सभी प्रान्तों के डी० ए० वी० स्कूल तथा आर्य शिक्षा संस्थाओं ने इसको अपना लिया है और अ० भारतीय आर्यकुमार परिषद् की "सिद्धान्त विशारद" परीक्षा में इसके छः भाग नियत हैं। माता पिता भी इनके द्वारा अपने बालकों को भली भांति अनायास धर्मशिक्षा दे सकते हैं।

मू०	१-२ भाग =)	३य भाग =)	४र्थ भाग =)
	पञ्चम भाग ≡)	६ष्ठ भाग ≡)	७म भाग ।–)
	अष्टम भाग ।–)	९म भाग ॥)	१० भाग ॥)

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् की परीक्षाएं—सिद्धान्तविशारद और सिद्धान्तशास्त्री में नियत समस्त पाठ्यपुस्तकें नीचे लिखे पते से मिलती हैं।

व्यवस्थापक—

आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड, अजमेर.